UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182619

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.08 G72S Accession No. P. G. H3048

Author गोयलीय, अयोध्याप्रसाद सं

Title शायरी के नये दौर. 1958.

This book should be returned on or before the date last marked below.

दूसरा दौर.

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—७२

शाइरीके नये दौर

दूसरा दौर

१९२० ई० के पश्चात् ख्यातिप्राप्त
वर्त्तमानयुगीन शाइरोंका जीवन-परिचय
एवं चुना हुआ कलाम

VIDYA PRAKASHAN
V.P.
HYDERABAD.

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

P. G.

प्रथम संस्करण
अक्टूबर १९५८
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल,
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

सर्वाधिकार सुरक्षित

समर्पण

श्रद्धेय राहुलजी,

उच्च शिखरपर स्वयं ही नहीं बैठे, अपितु तलेहटीमें भटकते हुओंको भी उबारते रहते हैं। आपकी महानता, मानवता और विद्वत्ताके प्रति 'शाइरीके नये दौर' के समस्त दौर श्रद्धा-भक्ति पूर्वक समर्पित।

विनीत

१ मई १९५८ ई०] अ० प्र० गोयलीय

शायरी के नये दौर

दूसरा दौर

गोयलीय

विषय-सूची

प्राथमिक	३
आनन्दनारायण मुल्ला	३३
फ़िराक़ गोरखपुरी	६७
मुनव्वर लखनवी	११३
अम्न लखनवी	१३२
हरीचन्द अख़्तर	१४३
हफ़ीज़ जालन्धरी	१७१

प्राथमिक

पुरानी और नई शाइरीका अन्तर समझनेके लिए शाइरीके नये दौरके ये तीन दौर कायम किये जा रहे है—

शुरूका दौर[1]—नज़ीर, अनीस, दबीरका दौर १७५७ से १८५७ ई०तक।
बीचका दौर[2]—आज़ाद-हालीका दौर १८५८ से १९१४ ई० तक।
मौजूदा दौर[3]—इक़बाल, चकबस्त, जोश आदिका दौर १९१५ से १९५८ ई० तक।

शुरूका दौर

उर्दू-इतिहास-लेखकोंने नई शाइरीका सेहरा यद्यपि 'आज़ाद' और 'हाली' के सर बाँधनेका प्रयास किया है, किन्तु इन महानुभावोंसे १०० वर्ष पूर्व 'नज़ीर' अकबराबादीने निश्चित लक्ष्यतक पहुँचनेके लिए प्रशस्त मार्ग बनाकर मीलके पत्थर भी गाढ दिये थे। जो उर्दू-शाइर परमुखापेक्षी थे—हर बातके लिए अरब-ईरानका मुँह जोहते रहते थे। दिन-रात उन्हींका अन्ध अनुसरण करते रहते थे। नज़ीरने उन शाइरोंको यह

1. **नज़ीर**— जन्म १७४० मृ० १८३० ई०।
अनीस— जन्म १८०२ मृ० १८७४ ई०।
दबीर— जन्म १८०३ मृ० १८७५ ई०।
2. **आज़ाद**— जन्म १८३२ मृ० १९१० ई०।
हाली— जन्म १८३७ मृ० १९१४ ई०।
3. **इक़बाल**— जन्म १८७५ मृ० १९३७ ई०।
चकबस्त—जन्म १८८२ मृ० १९२६ ई०।
जोश— जन्म १८९६, जीवित।

बतानेका नम्र प्रयास किया कि—अपना देश भी गुण-गरिमाका आगार है। भारत-वसुन्धरा भी अपनी गोदमें असंख्य विभूतियाँ लिये हुए है। यहाँके सुख-वैभव, गुण-गौरव और प्राकृतिक सौन्दर्यसे आकर्षित होकर जिन देशोंके निवासी—बीहड़ जंगलों, रक्त-पिपासु रेगिस्तानों, कण्टकाकीर्ण मार्गों और दुर्गम पर्वतोंको रौंदते हुए यहाँ आकर बसनेपर सुख-शान्तिका अनुभव करते हैं। जिस देशको जन्नतकी उपमा देते हैं। अपने उसी सुजलाम्-सुफलाम् देशकी उपेक्षा करके पर-मुखापेक्षी बने रहना स्वाभिमान और देशभक्तिका परिचायक नहीं।

आपलोग कब तक तुर्की-हूर-जैसे हरजाई माशूक़के कूचेमें ख़ाक छानते फिरेंगे? क्यों नहीं अपने देशकी लाजवती, सतवन्ती कुलललनाओंके चरणोंकी ओर निहारते? जिनके पवित्र आँचलोंपर जन्नतकी हूरें भी सिज्दा करनेको लालायित रहती हैं।

बे-वफ़ा लैली और शीरींके ज़िक्रोंसे बहन-बेटियोंको राहे-वफ़ासे भटकानेका कबतक प्रयास करते रहोगे? आइशा, फ़ातिमा-जैसी पाकदामाँ अरबी खातून और सीता; दमयन्ती-जैसी पतिव्रताओंका उल्लेख करते हुए क्यों जम्हाइयाँ आती हैं?

क्या एक भी भारतीय प्रेम और चाहतमें मजनूँ और फ़रहादके समकक्ष नहीं रखा जा सकता? सीता-राम, राधा-कृष्ण, शकुन्तला-दुष्यन्त, संयोगिता पृथ्वीराज, नूरजहाँ-जहाँगीर, मुमताज-शाहजहाँ, हीर-राँझा और सोहनी-माहवालमें-से क्या एक भी जोड़ी उल्लेख योग्य नहीं?

जहाँ रुस्तम-ओ-सोहराबकी जवाँमर्दीका ज़िक्र करते हुए जबाँ नहीं थकती, वहाँ बप्पारावल, बाबर, जयमल-पत्ता, शेरशाह, प्रताप, मानसिंह, शेरअफ़ग़ान, जयसिंह, राजसिंह और रज़ियाबेगमको भी भूले-बिसरे याद कर लिया जाय तो ज़बान बदमज़ा न होगी।

यह माना कि कोहे-तूर और दजलाका तसव्वुर ज़रूरी है, मगर यहाँका अविजित हिमालय, रोग-नाशिनी गंगा-जमना भी ध्यानमें रहें तो क्या हानि है?

खजूरके पेड़ोंसे कभी मन ऊब जाये तो यहाँ के आम, नारंगी और निबुआके पेड़ोंके नीचे भी कभी-कभार बैठ जाया कीजिए, ये पेड़ कुछ-न-कुछ देंगे ही, लेंगे कुछ भी नहीं।

बुलबुलके नग़मए-पुरदर्द सुनते-सुनते कलेजा ज़ख्मी हो उठे तो उसपर कोयलकी कूकका मरहम लगा लिया कीजिए, भौरा बने हुए कली-कलीका रस चूसते-चूसते जी भर जाये तो पपीहेकी हूक सुनकर अपनी बेज़बान दुखिया बीवियोंके आँसू पूँछ दिया कीजिए।

ऊँटनी पर सवार लैलीको आप जी भरकर घूरिए, मगर बाग़ोंमें भूला-भूलतीं, कजरी और मल्हार गातीं, पनघटपै पानी भरतीं ललनाओंके नूपुरोंकी छम-छमकी आवाज़से भी कानोंको तृप्त कर लिया कीजिए।

परी-पैकरके मिस्री बुर्क़े, शैखकी दस्तारका तो आप ज़िक्र करते ही है, मगर कभी-कभी बसन्ती साड़ी, राठौड़ी साफ़े और मेवाडी पगिया पर भी करम फ़र्मा लिया कीजिए।

उक्त मनोभाव नज़ीरने मौलवियाना ढंगसे प्रस्तुत न करके शाइराना-तौर-तरीकेसे व्यक्त किये। **'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'**की नीति न अपना कर उक्त विचारोंको कार्य्य रूपमें परिणत किया। कूचए-ग़ज़लकी सैर करते हुए अपनी खुली आँखोंसे जो देखा, सरल और ललित भाषामें नज़्म कर दिया। नज़ीर मुस्लिम-कुलोत्पन्न होते हुए सर्वधर्मसमभावी थे। हज़रत अली पर २६ बन्दकी नज़्म[1] कही—

ऐ शाह! यह नज़ीर तुम्हारा ग़ुलाम है
रखता सिवा तुम्हारे किसीसे न काम है

---

१. नज़ीरकी इन सब लम्बी नज़्मोंका केवल एक-एक बन्द बतौर नमूना दिया जा रहा है।

आसी[1] है, पुरगुनाह[2] है और नातमाम[3] है
दिन-रात उसका आपसे अब यह कलाम है
रख लीजो मेरी आबरू या शेरे-किरदिगार[4] !

तो गुरु नानकपर ७ बन्दकी नज़्म कहते हुए फ़र्माया—

हैं कहते नानकशाह जिन्हें वह पूरे हैं आगाह[5] गुरू
वोह कामिल रहबर[6] जगमें हैं, यूँ रोशन जैसे माह[7] गुरू
मक़सूद[8], मुराद[9], उमीद[10] सभी बरलाते[11] है दिलख़ाह[12] गुरू
नित लुत्फ़ो-करमसे[13] करते है हम लोगोंका निर्बाह[14] गुरू
इस बख्शिशके[15], इस अज़मतके[16] हैं बाबा नानकशाह गुरू
सब सीस नवा अरदास करो, और हरदम बोलो वाह गुरू

जन्माष्टमीका त्योहार आया तो कृष्ण-जन्मपर कहनेसे क्यो चूकते ? ३१ बन्दकी नज़्म लिखकर अपनी उदारता का परिचय दिया है—

कोई घुट्टी बैठी गर्म करे, कोई डाले इसपंद[17] और भूसी
कोई लाई हँसली और खडुवे[18] कोई कुर्त्ता, टोपी, मेवा, घी
कोई देखे रूप उस बालकका कोई माथा चूमे महर[19] भरी
कोई भोओंकी तारीफ़ करे, कोई आँखोंकी, कोई पलकोंकी

१. अपराधी, पापी, २. गुनाहोंका भण्डार, ३. अपूर्ण, ४. ख़ुदाके शेर (हज़रत अलीकी उपाधि), ५. जानकार, ज्ञानी, ६. सच्चे पथ-प्रदर्शक, ७. चन्द्रमा, ८. इच्छा, ९. अभिलाषा, १०. आशा, ११. पूर्ण करते हैं, १२. दिलकी अभिलाषाएँ, १३ प्रसन्नता और दयापूर्वक, १४. पालन, १५. देनेके, १६. प्रतिष्ठाके, १७. एक क़िस्मके बीज, जिन्हें आगमें डालकर धूनी दी जाती है, १८. कड़े, १९. स्नेहविभोर।

कोई कहती उम्र बड़ी होवे, ऐ बीर ! तुम्हारे बालककी
कोई कहती व्याह बहू लाओ इस आस-मुरादोंवालेकी

और हरिकी तारीफ़में भी १५ बन्द कहे—

मैं क्या-क्या वस्फ़ कहूँ यारो ! उस शामबरन अवतारीके
श्री कृष्ण कन्हैया, मुर्लीधर, मनमोहन, कुञ्जबिहारीके
गोपाल, मनोहर, साँवलिया, घनश्याम, अटल बनवारीके
नन्दलाल, दुलारे, सुन्दर छबि, ब्रजचंद्र, मुकुट झलकारीके
कर धूम लुटैया दधि माखन, रंछोर, नवल गिरधारीके
बन-कुंज-फिरैया, रास-रचन, सुखदाई, कान्ह मुरारीके
हर आन दिखाये रूप नये, हर लीला न्यारी-न्यारीके
पत-लाज रखैया, दुःख-भंजन, हरिभक्ति भक्त आधारीके
नित हरि-भज, हरि-भज रे बाबा ! जो हरिसे ध्यान लगाते हैं
जो हरिकी आसा रखते है, हरि उनकी आस बजाते हैं

नज़ीरने धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक आदि सभी विषयोंपर निष्पक्ष और मुक्तकंठ से लिखा। उनके कलामसे उनकी जाति और मज़हबका चतुर-से-चतुर व्यक्ति भी आभास नहीं पा सकता।

अपने देशके त्योहारों, रीति-रिवाजों—होली, सलूना, दशहरा, ईद, दिवाली, तैराकी आदि पर भी लिखा और प्राकृतिक—बहार, चाँदनी, वर्षा, ऊमस, आँधी, सर्दी आदिकी छटा भी बखेरी।

आर्थिक स्थितिके—पैसा, मुफलिसी, आटे-दालका भाव, रोटियाँ आदमी नामा—जैसे आवश्यक अंगोपर भी जी भरकर कहा। दार्शनिक और आध्यात्मिक-जैसे नीरस विषय भी—बचपन, जवानी, बुढ़ापा, मौत, बनजारानामा, झोपड़ा, आईना, कलयुग, दुनिया धोकेकी टट्टी—

शीर्षक नज़्मोंमें इतनी सरल भाषामें नज्म किये कि अशिक्षित जनता भी समझ सके।

यहाँ तक कि बच्चोंके लिए भी—हंस, कौए और हिरनकी दोस्ती, रीछका बच्चा, तरबूज़, ककड़ी आदि नज़्मे कहीं। लेकिन उर्दू-शाइरीकी बद्‌किस्मती कि तत्कालीन शाइरोंने नज़ीरको शाइर ही न माना। उसे अशिक्षित जनताका एक तुकबन्द शाइर और चुटकलेबाज़ कहकर नज़र-न्दाज कर दिया गया। नजीरकी आवाज़ पहाड़ोंसे टकराकर विलीन हो गई। नज़ीरकी वाणी-वर्षा ऊसर धरतीको लहलहा न सकी।

गुलो-बुलबुलके शैदाई, आशियाना जलता देखते रहे, क़फ़स मज़बूत होते रहे, बहारोंमें खिज़ाँ आती रही। रंगीन मिज़ाज कूचए-हुस्नमें आवारा फिरते रहे और शैखो-ज़ाहिदकी पगडियाँ पियक्कड़ उछालते रहे। नज़ीरका यह प्रयास **'तुलसी कारी कामरी चढ़े न दूजो रंग'** का उदाहरण बनकर रह गया[1]।

आगरेमें जिन दिनों 'नज़ीर' उर्दू-शाइरीको ग़ज़लकी सीमित रेखासे विस्तृत क्षेत्रमें लानेका अभूतपूर्व अथक प्रयास कर रहे थे, लगभग उन्हीं दिनों लखनऊमें मर्सियोंका प्रचलन बढ़ रहा था, और यह प्रचलन यहाँ तक बढ़ा कि लोग-बाग ऊबकर कहने लगे कि—"बिगड़ा हुआ शाइर मर्सिये कहता है और बिगडा हुआ गवैया मर्सिये गाता है।" कोई भी चीज़ जब आवश्यकतासे अधिक होती है, तब लोगोंका मन स्वभावतः ऊब उठता है। हालाँ कि शाइरीका बीजारोपण मर्सियेसे ही हुआ। मर्सिया ही शाइरीका मूल है।

अरबमें शाइरीका प्रस्फुटन स्वाभाविक रूपसे हुआ। शाइर अपने वे मनोभाव जो हृदयमें सँजोकर रखनेके बजाय प्रकट करनेको बाध्य हो

---

१. नज़ीरका जीवन-परिचय एवं कलाम शेरो-शाइरी पृ० १७५ से १८० में दिया जा चुका है। यहाँ केवल प्रसंगवश उल्लेख-मात्र किया है।

जाता था, कविता-द्वारा व्यक्त करता था। ऐसे भाव जो मनमें दाबकर नहीं रखे जा सकते, वाणीसे, श्वासोच्छ्वाससे और आँखोंसे छलक ही पड़ते हैं। किसी आत्मीय व्यक्तिकी मृत्यु पर ही हिलोर लेते है और कलेजेको खुरच-खुरचकर खाते रहते हैं। इन्हीं शोकोच्छ्वासोंको शुरू-शुरूमें अरबके शाइर प्रकट करते थे और यही मर्सिये कहलाते थे।

फिर उत्तरोत्तर मर्सिया करबलाकी घटनाके लिए रूढ़ हो गया। इसका कारण यही था कि प्रत्येक शाइर मर्सियेमें ऐसी मनोव्यथा समो देना चाहता था कि सुननेवाले द्रवित हो उठे और उसीका मर्सिया सर्वश्रेष्ठ हो। करबलाका युद्ध और इमामहुसैनकी शहादत मुसलमानोंके लिए इतनी अधिक व्यथापूर्ण घटना है कि उनके विश्वासके अनुसार इतनी बड़ी और ट्रेजड़ी न कभी हुई, न होगी। अतः बादके शाइरोंने अपने मर्सियोंका मौजूँ वाक़याते-करबला चुना और इसतरह मर्सिया शब्द सदैवके लिए करबला सम्बन्धी घटनाके लिए रूढ़ हो गया और दूसरोकी शहादत या मृत्युपर कही गई नज़्म 'नौहा' कहलाने लगी।

प्रारम्भमें मर्सियेका न कोई निश्चित आकार-प्रकार था और न कोई नियम था। सुविधानुसार कुछ शाइर ५-७ शेरमे मर्सिया कह लेते थे, कुछ चौपदोमें कहते थे। जिस तरह इच्छा हुई कह लेते थे, कोई नियमका बन्धन नहीं था। मर्सियेको मुसद्दसमें कहनेका रिवाज 'सौदा'से शुरू हुआ और आगे चलकर मुसद्दस[1] नज़्मके लिए बहुत मकबूल हुआ।

दबीरके उस्ताद मीर 'ज़मीर'ने मर्सियेके गठनके लिए विशेष प्रयत्न किया और उसे व्यवस्थित रूप भी दिया। यानी प्रारम्भमें करबलाकी घटनाकी पृष्ठ-भूमि, फिर वीरोंकी सजधज और आनबानका वर्णन, फिर रण-भूमिको जाते समय परिजनोंसे बिदाई, मार्गकी कठिनाइयाँ, युद्ध-

---

१. मुसद्दसके एक बन्दमें छः मिसरे होते हैं। पृ० ११ से १५ तक नमूने दिये गये हैं।

क्षेत्रमे पड़ावकी व्यवस्था, रणक्षेत्रमे पदार्पण, प्रतिद्वन्द्वीसे गर्वीली वार्ता, आत्मवलिदान, अन्तमें हृदयभेदी विलाप ।

मर्सियागोईको चरम सीमापर अनीस और दबीरने पहुँचाया । इन दोनों बा-कमालोंने मर्सियेको वह मौलिक महत्ता प्रदान की। जिसके कारण उर्दू-शाइरी भी मस्तक ऊँचा कर सकी और साभिमान कह सकी कि "मेरे यहाँ भी एक चीज़ अरबी-फ़ारसीसे अछूती और श्रेष्ठतम है।" अभी तक उर्दू-शाइरीमें अरबी-फ़ारसीका अन्धानुकरण हो रहा था, किन्तु अनीस और दबीरने अपनी अलौकिक प्रतिभा और अनुपम सूझ-बूझसे मर्सियेको इतना उन्नत किया कि बादके शाइर उनकी गर्दको भी न छू सके और मर्सियेका यह चरम उत्थान ही उसके पतनका कारण बन गया। बक़ौल हफ़ीज़ जालन्धरी—

मेरे डूब जानेका बाइस तो पूछो।
किनारेसे टकरा गया था सफ़ीना ॥

मीर अनीसकी चार पुश्तोंसे मर्सियागोई होती आ रही थी। खुद फ़ख़्रिया फ़र्माया है—

उम्र गुज़री है इसी दश्तकी सैयाहीमें ।
पाँचवीं पुश्त है, शब्बीरकी मद्दाहीमें ॥

किन्तु अनीस अपनेसे पूर्वके और समकालीनों पर ही नहीं; भविष्यमें होनेवाले मर्सिया-गोओं पर भी फ़ौक़ियत पा गये। उनके यहाँ करबलाकी घटनाका इतना प्रभावक उल्लेख है कि सुनने या पढ़नेवालेकी वही स्थिति हो जाती है जो देखनेसे होती ।

यहाँ अनीसके मर्सियेके ९ बन्द बतौर नमूना दिये जा रहे हैं—

हज़रत अब्बास अपनी लाडली भतीजीकी प्याससे व्याकुल होकर नहरपर जाते है। उनकी स्वयंकी जीभ प्याससे सूखी हुई है, हलक़में काँटे पड़ गये है। नहरके साफ़-सुथरे निर्मल पानीको देखकर उनकी

प्यास और भी भड़क उठती है, परन्तु लश्करमें और भी तो प्यासे तड़प रहे है। उनकी पिपासा शान्त किये बिना हज़रत पानी कैसे पी लें ?

देखकर पानीको याद आगई बच्चोंकी प्यास
आबदीदा[1] हुए सद्‌मेसे जनाबे-अब्बास
इस अत्‌शमें[2] था ज़ब्स तिश्निगीए-शाहका पास
मश्क ली काँधेसे, मुँह फेरके बा-हसरतो-यास[3]
तसमा ग़ाज़ीने बसद रंजोमहन खोल दिया[4]
मश्कने देखके पानीको दहन[5] खोल दिया

हज़रत अब्बास तो इन्सान थे, वे अपने साथियोंसे पहले पानी पीनेको अनैतिक समझते थे, किन्तु मश्क तो इन्सान नहीं थी, वह तो निष्प्राण थी। वह पानीको देखकर मुँह क्यों न खोलती ? आज भी बहुत-से इन्सानुमाँ निष्प्राण मश्क सदृश मानव विद्यमान हैं, जो अपनी उदर-पिपासा शान्त करनेको मुँह खोले रहते है। **'मश्कने देखके पानीको, दहन खोल दिया'** मिसरेकी दाद देनेको हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं।

इसी प्यासका एक जगह उल्लेख और हुआ है। हज़रत अब्बास घोड़ेके साथ दरियापर निकल गये है। घोड़ा भी कई दिनसे प्यासा था, पानी देखकर वह बेचैन और आतुर हो उठता है। लेकिन अब्बास उसे कैसे प्यास बुझाने दें—

१. आँसू झलक पड़े, २. प्यासमें, ३. अभिलाषा-निराशापूर्वक, ४. मशकपर बँधे फ़ीतेको व्यथापूर्ण हृदय होते हुए भी खोल दिया, ५. मुँह।

दो दिनसे बेज़बाँ पै, जो था आबो-दाना[1] बन्द
दरियाको हिनहिनाके लगा देखने समन्द[2]
हरबार काँपता था, सिमटता था बन्द-बन्द
चुमकारते थे हज़रते अब्बास अर्जबन्द
तड़पाता था जिगरको जो शोर आबशारका[3]
गरदन फिराके देखता था मुँह सवारका

गर्मीका इस तरह चित्र खींचा है—

उड़ती थी ख़ाक ख़ुश्क था चश्मा हयातका[4]
खौला हुआ था धूपसे पानी फ़रातका[5]
आबे-रवाँ से[6] मुँह न उठाते थे जानवर
जंगलमें छिपते-फिरते थे ताइर[7] इधर-उधर
मर्दुम[8] थे सात पर्दोंके अन्दर अरक़से तर[9]
ख़स ख़ानए-मिज़ासे[10] निकलती न थी नज़र
गर आँखसे निकलके ठहर जाये राहमें
पड़ जायें लाख आबले पाये-निगाहमें[11]

---

१. पानी-खाना, २. घोड़ा, ३. पानीके कल-कल शब्दका, ४. जीवन-स्रोत, ५. दरियाका नाम, ६. बहते हुए पानीसे, ७. पक्षी, ८. मनुष्य, ९. पसीनेसे भींगे हुए, १०. पलकोंके बालों रूपी ख़सकी टट्टीसे, ११. नेत्रोंके पाँवोंमें फफोले पड़ जायें।

शेर उठते थे न धूपके मारे कछारसे
आहू[1] न मुँह निकालते थे सब्ज़ाज़ारसे[2]
आईना महरका था मकद्दर गुब्बारसे[3]
गर्दूंको तप चढ़ी थी, ज़मींके बुख़ारसे[4]
गर्मीसे मुज़तरब[5] था ज़माना ज़मीनपर
भुन जाता था जो गिरता था दाना ज़मीनपर

तलवारकी तारीफ़के दो बन्द—

अफ़लाकपर[6] चमकी कभी, सरपर कभी आई
कौन्दी कभी जोशनपै[7], सिपरपर[8] कभी आई
गह[9] पड़ गई सीनेपै, जिगरपर कभी आई
तड़पी कभी पहलूमें, कमरपर कभी आई
तै करके फिरी कौनसा क़िस्सा था फ़रसका[10]
बाक़ी था जो कुछ काट वोह हिस्सा था फ़रसका

बे-पाँव जिधर हाथसे चलती हुई आई
नद्दी इधर इक खूँकी उबलती नज़र आई
दमभरमें वह सौरंग बदलती हुई आई
पी-पीके लहू लाल उगलती हुई आई
हीरा था बदन रंग, ज़मरूदसे हरा था
जौहर जो कहो पेट जवाहरसे भरा था

---

१. हिरन, २. घाससे, हरियालीसे, ३. सूर्य धूलसे आच्छादित था, ४. ज़मीनकी गर्मीसे आस्मानको ज्वर आ रहा था, ५. बेचैन, ६. आकाशपर, ७. कवचपर, ८. ढालपर, ९. कभी, १०. घोड़ेका।

प्राकृतिक सौन्दर्यकी छटा यूँ बखेरते हैं—

तै कर चुका जो मंज़िले-शब[1] कारवाने-सुबह[2]
होने लगा उफ़क़से हवीदा[3] निशाने-सुबह
गर्दूंसे[4] कूच करने लगे अख़्तराने-सुबह[5]
हरसू[6] हुई बुलन्द सदाए-अज़ाने-सुबह[7]
पिन्हाँ नज़रसे रूए-शबे-तार[8] हो गया
आलम तमाम मतलए-अनवार[10] हो गया

थी दश्त करबलाकी ज़मीं, रश्के-आस्माँ[11]
था दूर-दूर तक शबे-माहताबका[12] समाँ
छिटके हुए सितारोंपै ज़र्रोंका था गुमाँ
नहरे-फ़रात बीचमें थी मिस्ले-कहकशाँ
सरसब्ज़ जो दरख़्त था वह मिस्ले-तूर[13] था
सेहराके[14] हर दरख़्तका साया भी तूर था

१. रातकी मंज़िल, २. प्रातःकालीन रूपी यात्री-दल, ३. ऊषासे प्रकट, ४. आस्मानसे, ५. प्रातःकालीन नक्षत्र, ६. चारों तरफ़, ७. सुबह की अज़ानकी आवाज़, ८. ओझल, ९. रातका अन्धकार, १०. प्रकाशमान, ११. आस्मानके ईर्ष्या योग्य, १२. चाँदनीका, १३. तूर पर्वतके समान, १४. जंगलके ।

चलना वोह बादे-सुबहके[1] झोंकोंका दम-ब-दम
मुर्ग़ाने-बाग़की[2] वोह ख़ुश उलहानियाँ बहम[3]
वोह आबो-ताबे-नहर, वोह मौजोंका पेचो-ख़म
सर्दी - हवायें, पर न ज़्यादा न बहुत कम
खा-खाके ओस और भी सब्ज़ा हरा हुआ
था मोतियोंसे दामने - सेहरा[4] भरा हुआ

मीर अनीसके यहाँ भी तत्कालीन शाइरोंकी तरह कपोल कल्पनाओं और व्यर्थ बातोंकी भरमार है। वे शाइराना उड़ानमें एक ही बन्दमें परस्पर विरोधी बात भी कहते रहे हैं। गर्मीकी भयानकताका वर्णन करते हुए जहाँ वे यह कहते हैं—

आहू न मुँह निकालते थे सब्ज़ाज़ारसे

उसी बन्दके चौथे मिसरेमें कह जाते हैं—

भुन जाता था जो गिरता था दाना ज़मीनपर

उक्त मिसरा कहते हुए उन्होंने यह महसूस ही नहीं किया कि जब [ग]र्मीके प्रभावसे दाना भुन जाना कहा जायगा तो इसी बन्दका पहलेका कहा [हु]आ मिसरा उपहासास्पद हो जायगा। क्योंकि जब गर्मीकी अधिकतासे ज़मीन [प]र गिरते ही दाना भुन सकता है, तब उस भाड़-जैसी ज़मीनपर घास [कै]से बनी रही? और जब—

गर आँखसे निकलके ठहर जाये राहमें
पड़ जायें लाख आबले पाए-निगाहमें

१. प्रातःकालीन हवाका, २. पक्षियोंकी ३. परस्परका आनन्दमयी गीत, ४. जंगलका मैदान, ५. हिरन, ६. हरियालीसे, घाससे।

अनीसने उक्त शेर कहा तो यह उन्हें ख़याल ही न आया कि जिस रणक्षेत्रमें देखने मात्रसे आँखोंमें फफोले पड़ जाते हों, वहाँ मनुष्योंका युद्ध करना असम्भव है। वे तो गर्मीकी अधिकतासे चनेकी तरह भुन गये होते। तलवार उठानेकी मुहलत ही कहाँ मिलती?

इसीप्रकार यह कहना कि ऐसी जंग हुई कि जमीन थर्रा गई, आस्मान काँपने लगे, पहाड़ जगह-जगहसे हट गये, फ़रिश्ते मारे भयके आस्मानोंमें छिपते-फिरते थे, वास्तविकतासे सम्बन्धित नहीं। इमामहुसैनके साथ कुल ७२ व्यक्ति थे। शत्रुके पास हज़ारोंकी सख्यामें सैनिक थे। ३-४ घण्टेमें ही सब कुछ समाप्त हो गया।

यह युद्ध नहीं, धार्मिक बलिदान था। अन्यायके सामने झुकनेके बजाय हक़के लिए शहादतका जाम पीना उन ७२ मुसलमानोंने उचित समझा।

लेकिन इसतरहकी कपोल-कल्पनाके लिए केवल अनीस या दबीर ही ज़िम्मेवार नहीं; इस तरहकी शाइरीका उन दिनों आम रिवाज था। अधिक-से-अधिक कल्पना-संसारमें उड़ान भरना; उन दिनों शाइराना कमाल समझा जाता था। फिर अनीस और दूसरे मर्सिये-गो शाइरोंका तो उद्देश्य ही यह था कि वे युद्ध-कौशलका अतिरंजित वर्णन करके मुसलमानोंमें वीरताके भाव भरें। करबलाकी ऐसी भयावह तसवीर खींचे कि हर मुसलमानमें मुसीबतोंसे टक्कर लेनेकी क्षमता आये और इस्लामपर मर मिटनेके भाव उदित हों। करबलाके शहीदोंकी इतने व्यथापूर्ण शब्दोंमें उल्लेख किया जाय कि सुननेवाले सीना और सर पीटकर रुदन करने लगें और मुजाहिदोंके प्रति अधिक-से-अधिक श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो सके; और इसमें शक नहीं कि 'अनीस' और 'दबीर' अपने उद्देश्यमें पूर्ण सफल हुए।

अनीस और दबीरके पूर्व कालमें, उनके जीवन-कालमें और बादमें भी मर्सिये कहनेवाले हुए, किन्तु उनके कमालको कोई न पहुँचा। मर्सिये चूँकि करबलाकी घटनासे रूढ़ हो गये थे, अतः उनका आकर्षण केवल

मुसलमानोंके एक वर्गके लिए और वह भी सालमें सिर्फ़ मुहर्रमके दिनोंके लिए रह गया।

शोक-जनित शाइरी होनेके कारण भी मर्सियेका फ़न अधिक नहीं पनप सका और उँगलियोंपर गिनतीके व्यक्ति ही इस फनमें तब्अ आज़माई करते रहे। इससे अधिक विकासकी मर्सियेमें गुंजाइश भी न थी। क्योंकि करबलाके उन ७२ शहीदोंके ३—४ घण्टोंके बलिदानको जितना अधिक-से-अधिक बढ़ाकर कह सकते थे, अनीस और दबीर कह गये थे। जिनकी सूक्ष्म दृष्टिसे कह सकने योग्य कुछ भी ओझल नहीं रहा था। बल्कि लोगोंको तो यही आश्चर्य है कि उन बा-कमालोंने राईको पर्वत बनाकर दिखा दिया।

बीचका दौर

सन् १८५७ के विप्लवके बाद भारतमे जो उलट-फेर हुए, जिन भयावह परिस्थितियोंने भारतवासियोको घेर लिया, उनकी कल्पना किसीको स्वप्नमें भी न थी। इस अकस्मात् आये क्रान्तिकारी युगसे भारतके राजनीतिक धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रोमे हलचल मच गई। "भारतवर्षपर अंगरेज़ों-द्वारा अधिकार जमा लेनेके कारण भारतीय सशंकित हो उठे, कि कहीं राज्यके साथ-साथ धर्म मज़हब, संस्कृति एवं तमद्दुनसे भी हाथ न धोना पड़े। इन्हे सुरक्षित रखनेके लिए हिन्दू-मुसलमानोंमें एक होड़-सी लग गई। हिन्दुओंने विश्वविद्यालय और गुरुकुलकी नींव डाली तो मुसलमानोंने यूनिवर्सिटी, मकतब तामीर किये। हिन्दू-मुसलमानों द्वारा सभाएँ-अँजुमनें स्थापित की जाने लगीं। पत्र और अखबार निकाले गये।"[1] राष्ट्रीय-चेतनाको उभारने और क़ौमोंमें जीवन-ज्योति फूँकनेवाले गद्य-पद्य-साहित्यका सृजन भी बहुत आवश्यक था।

---

१. शेरो-सुख़न पाँचवाँ भाग द्वितीय संस्करण पृ० १०० ।

समाजोत्थान और राष्ट्र-निर्माणमें साहित्य उपयोगी हो, जनतामें अपने देश और समाजके लिए मर मिटनेकी भावना उत्पन्न करे, सदाचारी और कर्मशील जीवन बनाये—ऐसे साहित्यका उर्दूमें नितान्त अभाव था।

राष्ट्रीय-जागरण, सामाजिक-चेतना, शिक्षा-प्रसार, सुधार-आन्दोलन आदिके लिए पद्य साहित्य मंत्रका प्रभाव रखता है; किन्तु उर्दूका पद्य-साहित्य तो केवल ग़ज़लपर आश्रित था, और ग़ज़ल उन दिनों कूचए-हुस्नो-इश्क़से बाहर निकलनेको प्रस्तुत न होती थी।

अतः स्वस्थ और प्राण-संचारक पद्य-साहित्यका अभाव दूरन्देश महानुभावोंको बुरी तरह खटकने लगा। इन्हींमें से 'आज़ाद' और 'हाली' हिम्मत बाँधकर आगे बढ़े। उनके सामने नज़ीर-द्वारा-निर्मित किया हुआ मार्ग मौजूद था। पूर्ववर्त्ती लोगोंकी उपेक्षाके कारण यद्यपि वह मार्ग झाड़-झँकाड़ों-द्वारा आच्छादित हो चला था, फिर भी अनीस-दबीर द्वारा प्रदान किये गये अणुवीक्षण यंत्रसे दिखाई पड रहा था। अतः उन दोनोंने निर्भय और निःसंकोच होकर उस मार्गपर चलनेका निर्णय किया।

मार्गपर चलनेसे पूर्व उन्होंने अपने साथ कुछ और सहयोगियोंका साथ भी आवश्यक समझा। इसके लिए आज़ादने १५ अगस्त १८६७ ई० में 'अंजुमने-उर्दू' की लाहोरमें स्थापना की। जिसके कारण चन्द दिनोंमें ही उन्हें काफ़ी सहयोगी मिल गये।

आज़ादने[1] ग़ज़ल कहनेका परित्याग करके प्राकृतिक सौन्दर्य्य और हुब्बे-वतन सम्बन्धी नज़्म स्वयं भी कही और दूसरोंसे भी कहलवाई। हालीने[2] मुसलमानोंमें छाई हुई अकर्मण्यता और अन्य दोषोंको दूर करनेके लिए तत्कालीन पतितोन्मुखी स्थितिका बहुत करुण मर्सिया कहा, साथ ही

१—२ आज़ाद और हालीका परिचय एवं कलाम शेरो-शाइरीमें २६ पृष्ठोंमें और शेरो-सुख़न प्रथम भागमें ३४ पृष्ठोंमें दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उनका उल्लेख उक्त पुस्तकोंमें यत्र तत्र भी काफ़ी हुआ है।

उनमें जोश और उमंग भरनेके लिए उनके पूर्वजोंके शौर्य-वैभव, गुण-गरिमाके चित्र भी खींचे।

"इस नवीन शाइरीपर अँग्रेजी-साहित्यका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अँग्रेज़ी कविताएँ प्रेमके अतिरिक्त—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक, प्राकृतिक, राष्ट्रीय, आदि अनेक जीवनोपयोगी एवं सामयिक विचारोंसे ओत-प्रोत थीं। विश्वकी मुख्य-मुख्य घटनाएँ अँग्रेजी कविताओं द्वारा बहुत सुरुचिपूर्ण ढंगसे व्यक्त की जाती थीं। अँग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय शाइर इन कविताओंसे बहुत प्रभावित हुए और वे भी उर्दू-शाइरीको परिपूर्ण बनानेके लिए प्रयत्नशील हो उठे।"[1]

जिसप्रकार नदीका प्रवाह उद्गम स्थानमें बहुत मन्द रहता है, उसी तरह नई शाइरीका दौर भी बहुत धीमे-धीमे चला। उर्दूके तत्कालीन जो ख्याति-प्राप्त शाइर थे, वे प्रायः ग़जलके प्रेमी थे, उनमें से बहुत कम ग़जलकी तरफ़ आकर्षित हुए। अधिकांश शाइर प्रचलित ग़ज़लगोईके आशिक़ थे। वे कूचए-ग़ज़लसे तिलभर भी इधर-उधर होनेको तैयार न थे। मगर कुछ युवक वर्ग ऐसा भी था जो ग़जलपर प्राण-पणसे न्योछावर होते हुए भी, उसमें परिवर्त्तन परिवर्द्धन आवश्यक समझता था। अतः यह वर्ग ग़ज़लकी अजमतका काइल होनेके कारण नज़्मकी तरफ़ तो नहीं झुका, परन्तु ग़जलको व्यापक और समृद्ध बनानेमें जुट गया।

इस वर्गने पुरातन उपमाओं, उदाहरणों, रूपकों और उर्दू कविताके व्याकरणका बन्धन भी आवश्यक समझा और आवश्यकतानुसार संशोधन-परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन भी जरूरी समझा। निश्चयानुसार ग़ज़लमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सामयिक भावोंका भी कलापूर्ण ढंगसे समावेश किया जाने लगा, ताकि ग़ज़लका रूप और शृङ्गार भी बना रहे, साथ ही नवीन सभ्यताका निखार भी आजाये। जैसे किसी सम्भ्रान्त महिलाका यह प्रयास कि वह सुन्दर परिधान और साज-सज्जासे मोहक भी

१. शेरो-सुखन पाँचवाँ भाग द्वितीय संस्करण पृ० ६६।

रहे, साथ ही शिक्षित और सभ्य भी मालूम दे। न तो वह फैशनकी पुतली या उछाल छक्को बनना चाहती है और न वह ज़ेवरोंसे लदी गँवार और न किसी मठकी सन्यासिनी।

यूँ तो ग़जलमें अभूतपूर्व परिवर्तन मिर्जा ग़ालिबने प्रारम्भ कर दिया था और नवीन दिशाका दिग्दर्शन करा दिया था, किन्तु उनके बादकी पीढ़ीमें हुए, शाइरोंमे—शाद अज़ीमाबादी, हसरत मोहानी, फ़ानी बदायूनी असग़र गोण्डवी, यगाना चंगेज़ी, साक़िब लखनवी, अजीज लखनवी, दिल शाहजहाँपुरी आदिने आवश्यक परिवर्तन-संशोधन करके ग़ज़लकी अज़मतको चार चाँद लगानेमें अविस्मरणीय कार्य किया।

ग़ज़लमें कितना अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ और वर्त्तमानमें वह कितने ऊँचे स्थानपर पहुँच गई है। इसके जाहिर करनेका यहाँ मौक़ा-महल नहीं। शेरो-सुखनके पाँचवे भागमें २०६ पृष्ठोमें विस्तृत विवेचन हो चुका है। शेरो-शाइरीमें भी काफ़ी उल्लेख हुआ है और आवश्यकतानुसार 'शाइरीके नये दौर' तथा 'शाइरीके नये मोड़' मे भी यत्र-तत्र विवरण दिये जायेंगे।

ग़जल-गो शाइरोंमें-से—इस्माइल मेरठी, नज़मत बातबाई, सफ़ी लखनवी, नौबतराय नजर, ज्वालाप्रसाद बर्क़, दुर्गासहाय सरूर वग़ैरह नज़्मकी ओर झुके। साथ ही ग़ज़ल भी कहते रहे। अधिकांश वह युवक ही नज़्मकी तरफ़ अधिक आकर्षित हुए, जिन्होंने कि कूचए-शाइरीमे नया-नया क़दम रक्खा था। यही कारण है कि इस प्रारम्भिक युगकी नज़्मगोईमें वह निखार और लालित्य नहीं मिलता, जो वर्त्तमानकी नज़्मोंमें मिलता है। बहरहाल वह आन्दोलनका प्रारम्भ था और वह प्रारम्भिक युग उर्दू-शाइरीके लिए स्वर्ण युग सिद्ध हुआ। विशाल वट-वृक्षका बीज सूक्ष्म ही होता है, विकास तो उत्तरोत्तर होता है।

कुछ महानुभावोंने अंग्रेज़ी-कविताको उर्दूका लिबास बहुत सलीक़ेसे पहनाया। किसीने अंग्रेज़ी कविताओंको शाब्दिक नज़्मका रूप दिया, किसीने भावोंको नज़्म किया। कुछने प्राकृतिक सौन्दर्यपर नज़्म कहीं, किन्हीने

धर्मग्रन्थों और पुराणोंको नज्म किया। कुछ नैतिक, सदाचार सम्बन्धी नज़्म कहीं गईं तो वतनियतपर भी नज्में लिखी गईं। ग़रज़ कि उर्दू नज्मके गुलदस्तेको अनेक तरहसे सजाया जाने लगा।

इस युगके चन्द नज्म-गो शाइरोंका परिचय यहाँ अत्यन्त संक्षेपमें दिया जा रहा है—

इस्माइल मेरठी—सन् १८४४ ई० में मेरठमें जन्मे। १६ वर्षकी आयुमें शिक्षा-विभागमें नियुक्त हुए और अपनी योग्यताके बलपर बहुत शीघ्र फ़ारसीके प्रधान शिक्षक पदपर आसीन हो गये। १८९९ ई० में पेंशन लेकर शेष जीवन साहित्य-सेवामें व्यतीत किया। १९१७ ई० में मृत्यु पाई। आपने अंग्रेज़ी कविताओंको उर्दू-नज्मका रूप देनेके अतिरिक्त स्कूलोंके लिए बहुत उपयोगी रीडरें लिखीं। नज़्में, रुबाइयाँ, ग़ज़लें कहीं और बच्चोंके लिए सरल भाषामें उपदेशपूर्ण नज्म कहीं। यहाँ एक नज्मके चन्द शेर बतौर नमूना पेश हैं। देखिए किस खूबीसे बच्चोंको शब्दोंके मायने याद करानेका प्रयास किया है—

वही 'कारवाँ' वही 'काफ़िला' तुम्हें याद हो कि न याद हो
वही 'मंज़िल'-ओ-वही 'मरहला' तुम्हें याद हो कि न याद हो

मुतफ़ाइलिन, मुतफ़ाइलिन, मुतफ़ाइलिन, मुतफ़ाइलिन
इसे वज़्न कहते हैं शेरका, तुम्हें याद हो कि न याद हो

यही 'शुक्र' है जो 'सिपास' है वह 'मलूल' है जो 'उदास' है
जिसे 'शिकवा' कहते हो है 'गिला' तुम्हें याद हो कि न याद हो

वही 'नुक़्स' है, वही 'खोट' है, वही 'ज़र्ब' है, वही 'चोट' है
वही 'सूद' है, वही 'फ़ायदा' तुम्हें याद हो कि न याद हो

वही है 'नदी' वही 'नहर' है वही 'मौज' है वही 'लहर' है
यह 'हुबाब' है वही 'बुलबुला' तुम्हें याद हो कि न याद हो

जिसे 'भेद' कहते हो 'राज़' है जिसे 'बाजा' कहते हो 'साज़' है
जिसे 'तान' कहते हो है 'नवा' तुम्हें याद हो कि न याद हो
वही 'ख्वार' है जो 'ज़लील' है, वही दोस्त है जो खलील है
'बद'-ओ-'नेक' है, 'बुरा'-'भला' तुम्हें याद हो कि न याद हो

अकबर इलाहाबादी—आपने नवीन शाइरीको ग़ज़लके रूपमें ही अभूतपूर्व योग दान दिया। आपने परिहास और व्यंग्यकी आड़में बड़े मर्मस्पर्शी प्रभावशाली तीर छोड़े है। हँसी-हँसीमें राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा और नैतिक सम्बन्धी बड़ी चुटीली और मार्केकी बातें इस कौशलसे कही हैं कि इस रंगमें फिर किसी और को कहना नसीब न हुआ। आपका परिचय एवं कलाम शेरो-शाइरी पृ० २९४-३०६ में दिया जा चुका है।

नज़्म तबातबाई—आपने भी विविध विषयोंपर काफ़ी नज़्म कहीं। खेद है कि आपके कलामका संकलन हमारे पास इस वक़्त मिल नहीं रहा है, अतः नमूना नहीं दे पा रहे है। आपका परिचय एवं ग़ज़लके नमूने शेरो-सुखनके दूसरे भागमें छप चुके है।

सफ़ी लखनवी—आपने विशेषकर मज़हबी नज़्में कहीं और बहुत नाम पाया। आपका परिचय एवं ग़ज़लके अशआर शेरो-सुखनके दूसरे भागमें मुद्रित है।

मुंशी ज्वालाप्रसाद बर्क़—१८६३ में सीतापुरमें जन्मे। १८८२ ई० में बी० ए० और १८८३ ई० में एल-एल० बी० हुए। अभी आप दो वर्ष ही प्रेक्टिस कर पाये थे कि मुसिफ़ बना दिये गये। फिर जिला सेशनजज भी रहे। १९११ ई० में प्लेगमें स्वर्गवास हो गया। आपकी 'मसनवी बहार' बहुत सफल कृति है। सर सैयद अहमद उसे बहुत पसन्द करते थे। नमूना देखिए—

इठलाती, लजाती, मुसकराती
किस नाज़से है बहार आई

कमसिन, अल्हड़, हसीन, अलबेली
चौथीकी दुल्हन नई नवेली
बूटा-सा वह क़द बहारके दिन
उठती कोपल उभारके दिन
गहना फूलोंका ज़ेबे - तन है
धानी जोड़े पै क्या फ़बन है
घूँघट इक नाज़से निकाले
सेहरा फूलोंका मुँह पै डाले
हरियाली बनी वतनमें आई
इक सब्ज़परी चमनमें आई

उतरी गुलशनमें जब सवारी
सूरजने आरती उतारी
गुलने ज़रे-गुल किया निछावर
सदक़े हुई अन्दलीब उड़कर
शबनम भर लाई कोरे - कोरे
शरबतमें गुलाबके सकोरे
खुर्शीदने आईना दिखाया
किरनोंने मोरछल हिलाया
नहरें भर-भरके लाईं पानी
सब्ज़ेने बिछाया फ़र्श धानी
ख़ुशियाँ अशजारने मनाईं
मेवोंकी डालियाँ लगाईं
गुञ्चोंने चटकके ली बलाएँ
बुलबुलने चहकके दी दुआएँ

मुर्ग़ाने - चमनने गीत गाये
क्या-क्या नये ज़म-ज़मे सुनाये
बदली फूलोंने अपनी बर्दी
ऊदी, ज़ंगारी, लाजवर्दी
भौरोंने यह गूँजकर सदा दी
कोयलने यह फेर दी मुनादी
माशूक़ए - गुलज़ार आई
आई - आई बहार आई

मुंशी दुर्गासहाय सरूर—उत्तरप्रदेशीय पीलीभीत ज़िलेके जहानाबाद क़सबेमें १८७३ ई० में जन्मे और भरी जवानीमें ३ दिसम्बर १९१० को स्वर्गस्थ हो गये। आपने इस थोडी-सी उम्रमें ही उर्दू संसारमें अच्छी ख्याति प्राप्त की। मृत्युके चन्द दिन बाद आपका 'जामे सरूर' दीवान छपा। आपकी मृत्युपर 'हसरत' मोहानीने लिखा था—"सरूर जहानाबादी उर्दू-ज़बानके एक ऐसे बुलन्दपाया शाइर थे, जिनकी ला-जवाब नज़्में उर्दूअखबारोंकी ज़ेबाइश हुआ करती थी। हमारी नजरसे उनकी कोई ऐसी नज़्म नहीं गुज़री जिसके पढनेके बाद दिलसे बेइख़्तियार तहसीनो-आफ़रीनकी सदा बुलन्द न हुई हो। अगर 'सरूर' की ज़िन्दगी वफ़ा करती तो खुदा जाने उनकी शाइरीका मर्त्तबा कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाता? इस क़लील मुद्दतमें जो कुछ वोह कह गये, वह बक़ाए-दवाम (अमरत्व) की सनद हासिल करनेको काफ़ी है[1]।"

आपने 'हाली' के नज़्म-आन्दोलनमें खूब सहयोग दिया। ग़ज़लें कहना छोडकर नज़्म लिखने लगे, जो कि उस युगमें खूब पसन्द की गईं। उन दिनों नज़्मका कोई खास दृष्टिकोण तो था नहीं। प्रारम्भमें प्राकृतिक, सामाजिक, धार्मिक नज़्में लिखी गईं। सरूरने भी गंगा-जमुना, कुतब,

१. खुम खनाए जावेद जिल्द ४ पृ० १८१।

शमए-अंजुमन, शफ़क़, बीर-बहूटी, बरफ़, दिल आदि सैकड़ों नज़्में लिखीं। उस जागरण-कालमें भी जो महवे-ख्वाब थे, उनका कन्धा हिलाते हुए कहा—

ऐ महवे - निशात[1] सोनेवालो उठो
सरमाय - ए - उम्र[2] खोनेवालो उठो
आती है वोह क़ाफ़िलेसे आवाज़े-जर्स[3]
निकला है ख़ुरशीद[4] सोनेवालो उठो

उन दिनों वतनियतका कोई स्पष्ट चित्र नहीं था। आजकी तरह राष्ट्रीयकरण नहीं हुआ था। अपने शहर, ज़िलेको वतन शेष समूचे भारतको ग़ैरवतन समझते थे। आज़ादने भी अपनी 'हुब्बे-वतन' नज़्ममें दिल्लीको वतन और हैदराबादको ग़ैर वतन समझनेवाले एक कलाकारका जिक्र किया है। 'सरूर'ने समूचे भारतको वतन तसव्वुर करके उसकी गौरव गाथा और तत्कालीन पतितोन्मुखी स्थितिको नज़्म किया है। नमूनेके सिर्फ़ दो शेर दिये जाते हैं—

आह, ऐ ख़ाके-वतन! ऐ सुरम-ए-नूरे-नज़र[5]!
आह, ऐ सरमाय-ए-आसाइश-जानो-जिगर[6]!

भूतकालीन गौरवकी प्रशंसा और तत्कालीन स्थितिका उल्लेख करते हुए लिखा है—

तेरे जंगल अब भी हैं खाके-वतन महमाँ नवाज़।
तेरे पुतलेमें है क़ुदरतकी अदा-ए-जानवाज़॥

---

१. सुखस्वप्नमें लीन, २. आयुरूपी धन, ३. ऊँटकी घण्टीकी आवाज़, ४. सूर्य्य, ५. नेत्रको ज्योति देनेवाला सुर्मा, ६. जीवनधन।

जवानी लुटाने वालोंको 'रुखसते शबाब' नज़्ममें किस खूबीसे चेतावनी दी है—

गुले-रुख़सार[1] यूँ है पज़मुर्दा[2]
जैसे कलियाँ चमनमें मुर्झाई
रूठकर चल दिया जो हमसे शबाब
उफ़! यह किसकी अदा तुझे भाई
हैफ़ तेरी न क़द्र की हमने
खोके आई समझ तो क्या आई

रामके वन-गमनपर सीता भी साथ चलनेके लिए अनुनय विनय करती है। इस लम्बी नज़्मके चार शेर मुलाहिज़ा हों—

हमराह बनके साथ मेरी रूह जायगी
सायेकी तरह साथ मेरी रूह जायगी
पीताम्बर समझके दरख़्तोंकी छालको
आरास्ता करूँगी क़दे-नौनिहालको
सब्ज़ा बनाके लायगा बिस्तर मेरे लिए
झूला झुलाने आयगी सर-सर हवा मुझे
पलकोंसे राहे-दश्तको झाड़ा करूँगी मैं
दासी हूँ ले चलो मुझे सेवा करूँगी मैं

गंगा पर नज़्म कहते हुए फ़र्माया—

ओ पाक नाज़नीं[3] और फूलोंके गहने वाली!
सरसब्ज़ वादियोंके[4] दामनमें बहने वाली!

१. कपोल रूपी फूल, २. मुर्झाये हुए, ३. पवित्र कोमलांगी, ४. हरी-भरी घाटियोंमें।

हिन्दोस्तान है इक दरियाए-हुस्ने-क़ुदरत
और उसमें पंखड़ी है तू खुशनुमाँ कँवलकी

'वीरबहूटी'—वह सुर्ख़ मखमली रंगके कीड़े जो वर्षा ऋतुमें अक्सर दिखाई देते है। उनपर चन्द शेर—

कुछ अजब आलम है तेरे हुस्नके अन्दाज़का
सुर्ख़ डोरा है किसी चश्मे-फ़सूँ परवाज़का[1]
क़तरए-मुज़तर है ख़ूने-कुश्तगाने नाज़का[2]
क़ल्बे-ख़ूँ गुश्ता है मिज़गाँ पर किसी जाँबाज़का[3]
या शफ़क़का[4] कोई टुकड़ा है ज़मींपर जल्वागर
जामे-ज़रींमें है सहबाए-अहमर[5] जल्वागर
गुलबदामाँ है शफ़क़में शोलए-तनवीरे-हुस्न[6]
ख़ूने-आशिक़ या ज़मींपर है गरेबाँगीरे-हुस्न?
या अक़ीक़े-सुर्ख़की[7] छोटी-सी है तामीरे-हुस्न[8]
नक़्श नैरंगे-फ़सूँ है या कोई तसवीरे-हुस्न

जल्वए-गुल है फ़ज़ाए-वादिए-पुरख़ारमें[9]
सुर्ख़ तकमा है क़बाए-सब्ज़ए कुहसारमें[10]

१. सुन्दरीकी आँखका, २. माशूक़ द्वारा क़त्ल हुए आशिक़ोंके तड़पते हुए रक्तकी बूँद, ३. भवोंपर आशिक़का घायल दिल है, ४. ऊषाका, ५. बहुत लाल शराब जाममें हैं, ६. सौन्दर्यके प्रकाशकी लाली ऊषा में सुसज्जित है, ७. लाल रंगके पत्थरकी, सुर्ख़ शराबकी, ८. सौन्दर्य निर्माण करनेके लिए लाल रंगका पत्थर, ९. कंटकाकीर्ण मार्गमें लाल फूल, १०. पहाड़ोंकी घाटियाँ रूपी चोग़ेकी बटन।

जल्वए-गुलसे है रंगी रूए-ज़ेबाए-बहार[१]
नाज़नीं है या कोई महवे-तमाशा है बहार[२]
या मए-गुल रंगसे गुलगूँ है मीनाए-बहार[३]
या है आग़ुश्ता नजूँ दाग़े सवेदाए-बहार
सब्ज़ए-कुहसारने या लाल है उगला कोई ?
चुन रही है फूल या दोशीज़ए-रअ़ना[४] कोई ?

....

नाज़ है सहराको[५] तेरी शोख़िए-रफ़्तारपर
दौड़ता है ख़ूँका क़तरा [६]सब्ज़ए-कुहसारपर

मारे-यास्मीन—शीर्षकसे साँपके सम्बन्धमें देखिए क्या-क्या अछूते भाव व्यक्त किये है—

आ कलेजेसे लगालूँ तुझको मारे - यास्मीं[७]
है किसी गैसूके ख़म[८], तुझमें किसी अब्रूकी चीं[९]
यह क़यामतकी शिकन और यह बलाके पेचो-ख़म
आह किस काफ़िर अदाकी तू है ज़ुल्फ़े-अम्बरीं[१०]
शबको[११] पानीसे, दुल्हन बनकर निकलता यूँ है तू
बाल खोले घरसे निकले जैसे कोई महजबीं[१२]

---

१. बाहरका मुख रंगीन फूलसे दिप रहा है, २. बहारको निरखनेमें कोमलांगी लीन है, ३. बहार रूपी पात्र लाल शराबसे भरा है, ४. सुन्दरी कुमारी, ५. जगलको अभिमान, ६. हरियाली पर, घासपर, ७. कोमल नाग, ८. लटोंके बल, ९. भवोंके तेवर, १०. सुगन्धित ज़ुल्फ़ें, ११. रातको, १२. चन्द्रमुखी ।

गर्मियोंमें जैसे सन्दल[1] है हसीनोंको पसन्द
ढूँढता फिरता है यूँ ही तू भी शाखे-सन्दलीं
फन उठाकर आह मस्तीमें वोह लहराना तेरा
जैसे हो जोबनकी मतवाली कोई नाज़आफ़री[2]
तुझसे मेरे गेसुओंवालेकी मिलती है अदा
मेरी नज़रोंमें तो है तू सौ हसीनोंका हसीं

ओ सितमगर! आह!! कब काला समझता हूँ तुझे
मैं तो अपना गेसुओंवाला समझता हूँ तुझे

हसरते-दीदार—औरंगज़ेब द्वारा कैद किये जाने पर शाहजहाँके मनोभावो पर जो नज़्म कही है, उसके चन्द शेर—

वोह शाने-कजकुलाही, वोह फ़ख़्रे-ताजदारी[3]
वोह तुर्रए - ज़रअफ़शाँ वोह ताजे - शहरयारी[4]
मुमताज़[5]! उफ़ वोह तेरी देरीना ग़मगुसारी[6]
वोह तेरी जाँनवाज़ी, वोह मेरी जाँनिसारी

क़िस्से-कहानियाँ है बातें वोह अब कहाँ हैं?
ऐ हुस्नो-इश्क़ तेरी घातें वोह अब कहाँ है?

बे नामो - बे निशाँ हूँ बे ताजो - बेनगीं हूँ
पामाल हो चुका जो वोह नक़्शे-दिलनशीं हूँ

---

१. चन्दन, २. नज़ाकतवाली, ३. राज मुकटकी शान और अभिमान, ४. हीरे-मोतीसे जड़ा हुआ बादशाही ताज, ५. शाहजहाँकी मलिका ६. सदैव दुःख-सुखमें सहयोग।

इक तंगो-तार हुजरेमें आह अब मकीं[1] हूँ
फ़रियादे - आतिशी हूँ, दूदे - दिले - हज़ीं हूँ[2]
पुतला हूँ आह अब मैं सोज़े-ग़मे-निहाँका[3]
रग-रगमें मुश्तअ़ल है शोला मेरी फ़ुग़ाँका[4]

अपनी असहाय स्थिति पर विचार करते-करते मुमताजका ध्यान आ जाता है और उसी ध्यानमें शाहजहाँको यह महसूस होता है कि मुमताज़ समीप बैठी है, उसी ध्यानमें फर्माते हैं—

अश्जार झूमते हों, शाख़ें लचक रही हों
खुशबू हो भीनी-भीनी कलियाँ महक रही हों
शबनमकी नन्हीं-नन्हीं बूँदे टपक रही हों
सब्जेपै मोतियोंका पानी छिड़क रही हो
मसरूफ़[5] आह ! हम-तुम गुलगश्त बाग़में हों
दामनमें फूल चुनते कुंजे फ़राग़में[6] हों

रवाँ—मुंशी जगतमोहनलाल 'रवाँ' उत्तर प्रदेशीय उन्नाव ज़िलेके मोग्वान क़सबेमे १४ जनवरी १८८६ ई० को पैदा हुए। अरबी-फ़ारसीके अतिरिक्त आपने अँग्रेजीकी भी सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त की। १६१४ ई० में आपने एम० ए० एल-एल० बी० पास किया। शाइरीकी रुचि बचपन से ही थी। अलिफ-बे शुरू करनेसे पेश्तर ही आप शेर कहने लगे थे। पहले आप 'असीर' लखनवीसे मशवरए-सुखन लेते थे। फिर अज़ीज लखनवीसे इसलाह लेने लगे थे। आपने अच्छी शुहरत हासिल की थी। लाला श्रीरामने आपके सम्बन्धमे लिखा था—"दिलमे दर्द, ज़बानमे तासीर पाई जाती है। तलाशे-मज़ामीनके साथ-साथ तरकीबे सुथरी,

१. सकीर्ण और अँधेरे स्थानमें बन्दी, २. निराश और दग्ध हृदयका धुआँ, ३. अव्यक्त दुःखकी आगका ढेर, ४. आहोंकी चिनगारियाँ रग-रगसे उठ रही हैं, ५. व्यस्त, ६. फ़ुर्सतके क्षणोंमें।

दिलनशीं और अलफ़ाज मौजूँ अच्छी बन्दिशमें सिल्के नज़्ममें पिरोते है"[1]। आपका ४४ वर्षकी उम्रमें १६३४ ई० में बैकुंठवास हो गया, यहाँ सिर्फ़ एक नज़्मके चन्द अशआर बतौर नमूना दिये जा रहे हैं। कूड़ेमें मिले एक अज्ञात बालकको देखकर ४६ अशआरकी नज़्ममें आपने इस घिनौने कृत्यका मर्मस्पर्शी वर्णन किया है—

सच बता बच्चे तेरा वारिस तेरा वाली है कौन ?
फूल है तू किस चमनका और तेरा माली है कौन ?
सच बता वोह दिल कहाँ है जिसका इक टुकड़ा है तू !
आह, वोह आँखें कहाँ है, जिनका एक तारा है तू !

. . . .

दिल नहीं कहता कि बदकारीका है अंजाम तू
हो रहा है गरचे दुनियामें यूँही बदनाम तू

. . . .

आह क्या इन्साँका हो सकता है यूँ भी खूँ सफेद
डालदे घूरे पै अपना मरकज़े-जज़्बे-उमीद
तौबा-तौबा हज़रते-इन्साँकी यह कमज़ोरियाँ
अशरफ़ उल मख़लूक होनेका है दावा फिर भी हाँ
पाल लेना कुछ तेरा माँको तेरी मुश्किल न था
संगरेज़ा था मगर पहलूमें उसके दिल न था
बाप-माँके नफ़्से-सरकशकी कहानी हाय-हाय
ऐ मआज़ अल्लाह बच्चेकी ज़बानी हाय-हाय
ख़ुदग़रज़ इन्सान तेरी ख़ुदपरस्ती अल्लामाँ
यह तेरी ना-आक़बत अन्देशमस्ती अल्लामाँ

1. ख़ुमख़ानए जावेद जिल्द ३ पृ० ५३७।

मौजूदा दौर

अभी तक उर्दू-शाइरीमें देशभक्तिकी वह भावना उदित नहीं हुई थी, जिसकी उसे सबसे अधिक आवश्यकता थी। इस भावनाको उभारनेमें सर इक़बाल और ब्रजनारायण चकबस्तने अभिनन्दनीय प्रयत्न किये। बादमें सर इकबाल विशेषतः इस्लामकी तरफ़ झुक गये, परन्तु चकबस्त जीवन-पर्यन्त देशके चारण बने रहे। चकबस्तकी नज़्में और ग़ज़लें बहुत उच्चकोटिकी और महत्त्वपूर्ण है। उर्दू-संसारमें आपको बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। सर इकबालने नज़्मसे अधिक ग़ज़लें कहीं और ग़ज़लको वह महानता प्रदान की, जिसके कारण वर्त्तमान युगके वे सर्वश्रेष्ठ शाइर समझे गये। इन दोनोंका परिचय एवं कलाम शेरो-शाइरीमें ५६ पृष्ठका दिया जा चुका है।

सन् १६१४–१८ के प्रथम महायुद्ध, १६१६ ई० में रौलटएक्ट, जलियानवाला बाग़-हत्याकाण्ड और १६२० ई० के बाद असहयोग आन्दोलनके कारण शाइरीमें एक नया इन्किलाब आया। इस इन्किलाबी दौरकी शाइरीके मुख्य जन्मदाता हज़रत जोश मलीहाबादी है। आपने देश-प्रेम, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यपर सैकड़ों नज़्में कहीं। साम्प्रदायिक संघर्षोंकी तीव्र भर्त्सना की। भारतके स्वतन्त्रता आन्दोलनपर आपने इतना लिखा कि भारतका कोई भी कवि उनकी हमसरी न कर सका।

हमने अपनी 'शाइरीके नये दौर' नामक पुस्तकका उद्घाटन इसी मौजूदा दौरसे किया है। क्योंकि यह दौर नवीन शाइरीका स्वर्णयुग है। इसी दौरमें नवीन शाइरी अपनी बाल्यावस्था और किशोरावस्था पार करके पूरे जाहो-जलालके साथ जवानीकी मंज़िलोंमें बढ़ रही है।

शाइरे इंक़िलाब हज़रत जोश मलीहाबादीकी ३६०० पृष्ठोंकी नज़्मों-रुबाइयोंका इत्र और उनका परिचय 'शाइरीके नये दौर' के पहले दौरमें ३३६ पृष्ठोंमें छप चुका है। इसी दौरके छः ख्यातिप्राप्त शाइरोंका यह दूसरा दौर प्रस्तुत है!

गो. प्र. गोयलीय

८ सितम्बर १६५८ ई०]

श्री आनन्दनारायण मुल्ला

श्री फ़िराक़ गोरखपुरी

श्री मनव्वर लखनवी

आनन्दनारायण मुल्ला

पं० आनन्दनारायण 'मुल्ला' काश्मीरी ब्राह्मण हैं। आपके पर-पितामह काश्मीरसे आकर स्थायी रूपसे लखनऊमें बस गये थे। आपके पिता पं० जगतनारायण मुल्ला लखनऊके प्रतिष्ठित नागरिक और नामी वकील थे।

आपका जन्म १६०१ ई० में लखनऊमें हुआ। १६११ ई० से स्कूली जीवन प्रारम्भ हुआ। १६२५ में एम० ए०, एल-एल० बी० हुए और १६२६ से सफलतापूर्वक वकालत कर रहे हैं[1]। वकालत आपका खान्दानी पेशा है—

"कहते हैं वकालत जिसे, घुट्टीमें पड़ी है"

१६२३ में आप आई० सी० एस० की परीक्षामें भी बैठे, परन्तु अपने स्वतन्त्र और विरोधी विचारोंके कारण बड़ी शानसे फेल हुए और फेल भी हुए उर्दूके पर्चेमें। इसका कारण यह था कि आप बहुत-सी साहित्यिक एवं ऐतिहासिक मान्यताओंसे सहमत नहीं थे, और वही असहमति आपने प्रश्नोत्तरमें भी प्रकट कर दी। हालाँकि दुनियादारीका तकाज़ा यह था कि अपने मनोभाव दबाकर वही लिख देते, जो कोर्सकी पुस्तकमें मुद्रित था, परन्तु आपकी अन्तरात्माने इसकी इजाज़त नहीं दी। परिणाम-स्वरूप उर्दू-साहित्यमें इन्हें कोरा समझकर परीक्षकोंने अनुत्तीर्ण कर दिया। आई० सी० एस० की परीक्षामें अनुत्तीर्ण होकर घरवालोंकी आशाओंपर पानी फेरना तो मंज़ूर, मगर ज़मीरके खिलाफ़ आपसे नहीं लिखा गया। इस एक घटनासे ही आपके स्वभावका परिचय मिल जाता है।

१. सुना है वर्तमान (१६५६ ई०) में आप मजिस्ट्रेट हैं।

स्कूल-कॉलेजमें पढ़ते हुए ही आपने उर्दू-फ़ारसीमें भी योग्यता प्राप्त करली। जो मौलवी घरपर पढ़ाने आते थे, उन्हें शाइरीसे इस क़दर दिलचस्पी थी कि आपको पाठ पढ़ानेके बाद स्वयं ग़ज़ल कहनेमें लीन हो जाते थे। उन्होने कई बार आपको कॉलेजके मुशाअरोंमें ग़ज़ल पढ़नेको दी, परन्तु उनकी ग़ज़ल अपने नामसे पढ़नेको मुल्ला कभी राज़ी नहीं हुए। हालाँकि मौलवी साहबने बार-हा समझाया कि शुरू-शुरूमें सभी नौसिखुए शाइर अपने उस्तादसे लिखाकर ही पढ़ते है, मगर आप न माने।

एक बार मौलवी साहबने अपने एक रईस मित्रकी किताबमें आपके नामसे तारीखी किता लिखकर छपवा दिया और आपका 'असर' तखल्लुस भी रख दिया। मुल्ला साहबने जब इसपर एतराज़ किया तो मौलवी काफ़ी खफ़ा हो गये।

१५-१६ वर्षकी अवस्थामें आपको अंग्रेज़ी-कविता करनेका शौक हुआ। वे कविताएँ कॉलेजके मेगज़ीनमें प्रकाशित हुआ करती थीं। विद्यार्थी अवस्थामें ही आपने 'अनीस' की चन्द रुबाइयातका अंग्रेज़ीमें अनुवाद किया, जो काफ़ी पसन्द किया गया।

१९२७ ई० में मुल्ला साहबको मन्द ज्वर आने लगा और डाक्टरोके परामर्शानुसार एक माह बिस्तरेपर लेटे रहना पड़ा। तभी आपको इक़बाल-का फ़ारसी कलाम 'पयामे-मशरिक़' पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ, और उससे इतने प्रभावित हुए कि पड़े-पड़े ही १०० कितोंका अंग्रेज़ीमें अनुदित कर लिया।

पं० मनोहरलाल ज़ुत्शीने (जो कि आपके स्कूली ज़मानेमें हेडमास्टर थे और सदैव आपको प्रोत्साहन देते रहते थे) परामर्श दिया कि अपनी योग्यता-का अंग्रेज़ी-कवितामें ह्रास न करके, उर्दू-शाइरीमें उसका उपयोग करो। आपने असमर्थता प्रकट की, मगर वे न माने और जब भी मुलाक़ात होती, उर्दूमें लिखनेका आग्रह करते। उनके निरन्तरके प्रेम-पूर्ण आग्रहके

कारण १६२७ ई० में पहली बार 'परस्तारे-हुस्न' नज्म कही, जो जुत्शी साहबने कानपुरके 'ज़माना' में प्रकाशित करा दी। इस नज़मके प्रकाशित होते ही जुत्शीसाहब और अन्य इष्ट-मित्रोंके प्रेमपूर्ण प्रोत्साहन मिलने लगे। धीरे-धीरे मुशाअ़रोंके निमंत्रण भी आने लगे।

मुल्ला लखनवी होते हुए भी, वहाँके स्कूलसे प्रभावित नहीं हुए। आप 'ग़ालिब', 'चकबस्त' और 'इक़बाल'से अधिक प्रभावित है।

आपने शाइरीमें किसीको अपना उस्ताद नहीं बनाया। क्योंकि आपका विश्वास है कि उस्तादके विचारोंकी छाप शिष्यपर पड़ती है और शिष्यके निजी भाव, विचार और व्यक्तित्व सब कुछ नष्ट हो जाते हैं।

आप कभी कसदन् शेर नहीं कहते। वकालतके अवकाश-क्षणोंमें यदि मनमें उमंग उठती है, तो शेर खुद-बखुद मुँहसे निकलने लगते है। उन्हें काग़ज़ पर भी नहीं लिखते। मस्तिष्कमें ही खाका बनाते है, संशोधन करते है, और वहीं सुरक्षित रखते है। आज भी उन्हे अपनी समस्त नज्में और ग़ज़लें ज्यों-की त्यों याद है। बडी-से- बड़ी नज्म भी मुशाअ़रेमें पढ़ी जानेके कई माह बाद कॉपी पर उतारी गई है।

'मुल्ला' यूँ तो ब्राह्मण कुलोत्पन्न हैं, किन्तु आप सम्प्रदायवादके बाड़ेमें बँधनेको हरगिज़ तैयार नही। फ़र्माते है—

> मैं फ़क़त इन्सान हूँ, हिन्दू-मुसलमाँ कुछ नहीं।
> मेरे दिलके दर्दमें तफ़रीक़े-ईमाँ कुछ नहीं॥

और यही तफ़रीक़ (भेद-भाव, पक्षपात-दृष्टि) जब आप इकबालके कलाममें पाते है, तो बेचैन हो उठते है। हालाँ कि आप इक़बालकी शाइरीसे बहुत अधिक प्रभावित हुए थे, किन्तु जब 'इक़बाल' वतन और प्रीतिके गीत गाते-गाते मज़हबी प्रलाप करने लगा तो, आपसे न रहा गया और व्यथा भरे स्वरमें कराह उठे—

. . . .

हिन्दी होनेपर नाज़ जिसे कल तक था, हेजाज़ी[1] बन बैठा।
अपनी महफ़िलका रिन्द[2] पुराना, आज नमाज़ी बन बैठा॥
ऐ बुलबुल! छोड़के शाख़े-गुल, क्यों ख़ारो-ख़समें[3] बैठा है?
क्या ज़ौक़े-असीरी[4] है तुझको, जो जाके क़फ़समें[5] बैठा है?

. . . .

तू भूल गया अपने नग़्मे कुछ फ़र्क़ मेरे कानोंमें नहीं।
तासीर[6] जो दिलपर करती थी; वोह लै ही तेरी तानोंमें नहीं॥

. . . .

अब गुलशनसे तुझको निस्बत? अब जुज़ निगहे-गुलचीं[7] न रही।
अब तेरी ज़बाँ हक़-गो न रही, अब तेरी नज़र हक़-बीं न रही॥

. . . .

तेरे जामे-दिलकी सहबा[8], अब कौसरमें[9] तब्दील हुई।
मज़हबके हाथों ख़ून तेरी पाकीज़गिए-तख़मील[10] हुई॥

. . . .

१. काबा और मदीनेकी संस्कृतिका प्रबल प्रसारक; २. मस्त, मद्यप, ३. घास-काँटोमें, ४. बन्दी होनेका चाव, ५. पिंजरेमें, ६. असर, ७. चमनको बरबाद करनेवालेकी दृष्टिके अतिरिक्त, ८. हृदयरूपी प्यालेकी सुरा, ९. बहिश्तकी सुरामें, १०. पवित्र विचारकता।

तू वोह क़तरा था जो अश्के-अरबाबे-नज़र[1] बन सकता था।
तू जाके सदफ़में[2] क्यों बैठा, जब यूँ ही गुहर[3] बन सकता था॥

....

अब हिन्दू और मुसलमाँकी दुनियाको कौन ज़रूरत है ?
मज़हब आइन्दा नस्लोंका नौए-इन्सानकी ख़िदमत है॥

....

अपनी रुसवाईका बाइस[4] तालीम यह 'मैं' और 'तू' की है।
इन्साँकी तरक़्क़ीकी दुश्मन तफ़रीक़[5] यह रंगो-बू की है॥

और उस तफ़रीक़को—जो इन्सानको इन्सानका रक्त बहानेको उद्यत कर दे, जड़-मूलसे नष्ट करनेके लिए मुल्ला, मन्दिरों, मस्जिदों तकको विध्वंस करनेकी बात सोचते हैं। क्योंकि उनका विश्वास है कि मज़हबी अखाड़ोंसे यह तफ़रीक़ी जर्म्स[1] संसारमें फैलते हैं—

मेरा बस हो तो हर मस्जिदसे रूए-ज़मींको पाक करूँ।
हर मन्दिरको मिस्मार करूँ, हर-एक किलीसा खाक करूँ॥

....

इसी भावको एक जगह यूँ व्यक्त किया है—

तुझे मज़हब मिटाना ही पड़ेगा रूए-हस्तीसे।
तेरे हाथों बहुत तौहीने-आदम होती जाती है॥

....

१. नज़रवालों (दिव्यदृष्टिवालों) की आँखका आँसू, २. सीपमें, ३. मोती, ४. कारण, ५. भेद-भाव।

मुल्ला, पेशेवर देशभक्त न सही, मगर सच्चे देश-भक्त अवश्य हैं। आप संसारकी दृष्टिमें गिरनेको राज़ी, मगर अपने देशवासियोंकी नज़रोंमें लमहे भरको गिरनेको प्रस्तुत नहीं।

मरते दम मैं हूँ, पशेमाने-जहाँ[1] यह मंज़ूर।
मेरे मालिक! मुझे करना न पशेमाने-वतन॥

लेकिन वतन-परस्तीका आपके यहाँ यह तसव्वुर नहीं कि दूसरे देशोंपर आक्रमण करके निरीह जनताको सताया या परतन्त्र किया जाय—

दिखा सकेगी न हरगिज़ जहाँको अम्नकी[2] राह।
सितमगरीकी वोह मशअ़ल[3] जो दूद़से[4] है सियाह॥

और जब आप इस तरहके अत्याचार संसारमें होते देखते है, तो कफ़े-अफसोस मलते हुए कहते है—

इन्साँकी जहालतका अभी है वही मेयार[5]।
है सबसे सिवा पुख़्ता दलील आज भी तलवार॥

'मुल्ला' जहाँ विश्व-शान्तिके समर्थक है, वहाँ अपने देशके भी सच्चे सपूत है। 'सारा जहाँ हमारा' का नारा लगानेवाली मुस्लिमलीग जब भारत-विभाजन और साम्प्रदायिक रक्त-पातके लिए उतारू हो गई तो आपकी हृदय-तंत्री रो पड़ी—

हर - इकके दीन पै इल्ज़ामे-काफ़िरी[6] रखकर
हरेक कुफ़्रपै ईमान लाये बैठे हैं।
सजाये बैठे है दूकाँ वतन - फ़रोशीकी
हरेक चीज़की क़ीमत लगाये बैठे हैं॥

---

१. संसारकी दृष्टिमें गिरा हुआ, २. शान्तिकी, ३. मशाल, ४. धुएँसे, ५. आदर्श, ६. कुफ़्रका दोष।

क़फ़समें[1] उम्र कटे, जीमें है ग़ुलामोंके ।
चमनकी राहमें काँटे बिछाये बैठे हैं ॥

नहीं शरीक मुसीबतमें हिन्दकी लेकिन—
इराक़ो - शामसे रिश्ते मिलाये बैठे हैं ॥

गिराई एक पसीनेकी बूँद भी न कभी ।
मताए - क़ौममें[2] हिस्सा बटाये बैठे हैं ॥

ख़ुदाकी शान इसी सरकी रफ़अतोंपै[3] ग़रूर ।
जो आस्ताने - अदूपै[4] सर झुकाये बैठे हैं ॥

भारत विभाजनकी माँगपर कितने वेदना भरे स्वरमें कराह उठते हैं—

जोशे-तक़सीम वारिसोंका न पूँछ ।
ज़िद यह है कि माँकी लाश कटके बटे ॥

और भारत-विभाजनके बाद—

यूँ दिल भी कहीं होते हैं जुदा 'मुल्ला' यह कैसी नादानी ?
यह रिश्ता ज़ाहिर तोड़ दिया, ज़ंजीरे-निहानी[5] भूल गये ॥

हमारे सामने आपका १९४९ में प्रकाशित 'जूए-शीर' मौजूद है । ३९२ पृष्ठोंमें आपकी बहुत-सी नज़्में और ग़ज़लें है ! यहाँ हम आपकी ग़ज़लोंके चन्द अशआर चुनकर दे रहे है—

१९२८ से १९३५ तक

कहनेको लफ़्ज़ दो हैं, उम्मीद और हसरत[6] ।
उनमें निहाँ[7] मगर इक दुनियाकी दास्ताँ है ॥

---

१. क़ैदमें, २. देशके धनमें, ३. बुलन्दीपर, ४. शत्रुकी चौखटपर, ५. अन्तरंगके बन्धनको, ६. अभिलाषा, ७. छिपी हुई ।

ऐ मुश्तेख़ाक[१] शमए-दिलको[२] बुझा न हरगिज़ ।
यह ही तो इक शरारे-हस्तीए-जा-विदाँ[३] है ॥

है हुस्न भी इक आफ़त, बाग़े-जहाँमें ऐ गुल !
किस-किससे तू बचेगा, गुलचीं है, बाग़बाँ है ॥

जीनेका लुत्फ़ सारा उल्फ़तकी यादसे है ।
पहले जो दर्दे-दिल था, अब वह सुकूने-जाँ[४] है ॥

मनए-मैनोशी की[५] ख़ातिर मैकदे[६] जाते हैं शेख़ ।
आदमी मालूम होते हैं मुझे चालाकसे ॥

वोह देखने तो लगे हैं मुझे चुराके नज़र ।
हिजाब टूट रहे हैं, मगर हिजाबके साथ ॥

इकबार की थी अर्ज़े-तमन्नामें कुछ कमी ।
और हुस्नकी नज़रमें गुनहगार हो गये ॥

दूर ही से दिल ही दिलमें हम तुम्हें चाहा किये ।
बन्द कर ली आँख और पहरों तुम्हें देखा किये ॥
ज़ुल्मते-दुनियामें जल्वे थे तेरे मस्तूर[७] कुछ ।
हम चिराग़े-ज़िन्दगी लेकर जिन्हें ढूँढ़ा किये ॥
मुख़्तसर अपनी हदीसे-ज़ीस्त[८] ये है इश्क़में ।
पहले थोड़ा-सा हँसे, फिर उम्रभर रोया किये ॥

---

१. मुट्ठी भर खाक, २. हृदय दीपकको, ३. जीवनकी अमर चिनगारियाँ, ४. दिलका चैन, ५. मद्यपान निषेधको, ६. मधुशालाको, ७. छुपे हुए, ८. जीवन-गाथा ।

अपना दर्दे-दिल समझनेकी यहाँ फ़ुर्सत किसे ?
हम तो औरोंका तड़पना देखकर तड़पा किये ॥

तिरी हस्तीसे मुनकिर[1] होते जाते हैं जहाँ वाले !
सँभाल अपनी ख़ुदाईको अरे ओ आस्माँ वाले !!

आहने-क़िस्मत[2] नहीं काटेसे कटता अक़्लके ।
यह छुरी बस ख़ूने-दिल करनेमें बेशक तेज़ है ॥

किसीको हम न रौंदेंगे अगर राहे-तरक़्क़ीमें ।
तो हर-इक ख़ाकके ज़र्रेको दामनगीर देखेंगे ॥

मुक़ामे-बेख़ुदी तक[3] लेगये पहले तमन्नाको !
क़दम फिर जिस तरफ़ रक्खा निशाने-राहे-मंज़िल[4] था

साक़ीकी निगाहोंमें तो मुजरिम न बनूँगा ।
टूटेंगे तो टूटें मेरे तौबाके इरादे ॥

आइनए-हस्तीको[5] बहुत ग़ौरसे देखा !
मुझको तो कुदूरत[6] ही कुदूरत नज़र आई ॥

दी वादए-फ़रदाकी[7] मुझे उसने तसल्ली ।
मुझको यह तसल्ली भी ग़नीमत नज़र आई ॥

१. नास्तिक, २. भाग्य-लोह, ३. आत्मविस्मृति तक, ४. लक्ष्य तक पहुँचनेके मार्गका चिह्न, ५. जीवन-दर्पणको, ६. ईर्ष्या, वैमनस्य, ७. भविष्यके वादेकी ।

दिल है दीवाना तो नासेह[1] ! उसको समझानेसे क्या ?
यह कहाँकी अक़्ल है, लड़ता, है दीवानेसे क्या ?
नातवाँकी[2] बेगुनाही भी नहीं आती है काम ?
पीसता है आस्माँ[3] कुछ पूछकर दानेसे क्या ?
महर[4] वोह है ख़ाकके ज़र्रे[5] जो करदे ज़रनिगार[6] ।
ऊँची - ऊँची चोटियोंसे नूर बरसानेसे क्या ?

सब्र आनेको आजाये मुझे हसरते-दिल पर ।
लेकिन यह तक़ाज़ा-ए-जवानी तो नहीं है ॥

या यही कहदे कि राहत तेरी क़िस्मतमें नहीं ।
मुझको देना है तो दे आज, क़यामतमें नहीं ॥

गुले-ख़न्दाँ[7] अभी ग़ाफ़िल है शायद ।
वही गुलचीं[8] भी है जो बाग़बाँ हैं ॥
गुजरना देखकर रहरौ[9] इधरसे ।
कहीं पर इक मज़ारे-बेनिशाँ है ॥

एक कोताह-नज़र, एक ज़रा दूर-अन्देश ।
फ़र्क़ कुछ ज़ाहिदो-मैनोशकी[10] नीयतमें नहीं ॥

१. नसीहत देनेवाला, २. निर्बलकी, ३. चक्को, ४. सूर्य, ५. कण, ६. प्रकाशमान, ७. मुस काती कली, ८. फूल तोड़नेवाला, ९. यात्री, १०. परहेज़गार और मद्यपकी ।

यह मेरी क़िस्मत कि नजरोंमें तुम्हारी हेच है ।
वरना यह जिन्से-वफ़ा[१] इतनी तो कम क़ीमत न थी ॥
शैख मैं और तर्के इसयाँ[२]? वोह भी जन्नतके लिए?
जब ख़ता की थी मेरे क़ब्ज़ेमें क्या जन्नत न थी ?

ख़ूने-जिगरके क़तरे और अश्क बनके टपकें ?
किस कामके लिए थे, किस काम आ रहे हैं ?

१९३६ ई०

ज़र्फ़े-साइल[३] भी बदल, ऐ रहमते-साइल-नवाज़[४] !
मैसे पुर[५] उन काँपते हाथोंमें जाम आया तो क्या ?
मुद्दआए-दिल समझ लेंगे अगर चाहेंगे वोह !
मेरे होंटों तक सवाले-नातमाम आया तो क्या ?
ख़ूने-दिल ज़ाया[६] न हो मुझको तो इतनी फ़िक्र है ।
अपने काम आया तो क्या ग़ैरोंके काम आया तो क्या ?

ले ही लिया असीरोंने[७] दीवानगीसे काम ।
ज़िन्दाँमें[८] सरको फोड़के, रोज़न[९] बना दिया ॥

हुस्नके बाजारमें होती नहीं कुछ उसकी क़द्र ।
सिक्कए-उल्फ़तपै जबतक मुहरे-रुसवाई नहीं ॥

१. नेकीका सौदा (वस्तु) २. गुनाह तर्क करनेकी बात, ३. भिक्षुककी शक्ति, ४. भिक्षुकपर कृपा करनेवाले, ५. सुरासे भरे, ६. नष्ट, ७. बन्दियोंने, ८. क़ैदमें, ९. सूराख ।

दिल है इक दौलत, मगर दर्द-आश्ना[1] होनेके बाद ।
अश्क मोती हैं मगर ग़मकी जिला होनेके बाद ॥
मुद्दआए-दिल न पूँछो डालकर अबरूपै[2] बल ।
इल्तिजा[3] आती है लब तक, आसरा होनेके बाद ।

झूटी तसल्लियोंकी कोई इन्तिहा भी है ?
बच्चे भी इस तरह नहीं बहलाये जाते हैं ॥

ता-बदामन[4] आई इक बेरंग-सी पानीकी बूँद ।
था ही क्या आँसूमें हर्फ़े-इल्तिजा[5] होनेके बाद ॥

१९३७ ई०

हमने भी की थीं कोशिशें, हम न तुम्हें भुला सके ।
कोई कमी हमीमें थी, याद तुम्हें न आ सके ॥
ज़ीस्तकी राहतोंमें[6] भी ग़म न तेरा भुला सके ।
लबसे हँसे हज़ार बार, दिलसे न मुसकरा सके ॥
क़ुफ़्ल-सा[7] इक ज़बाँ पै था आँखोंमें कुछ नमी-सी थी ।
होश नहीं कि दिलका भेद कह गये या छुपा सके ॥
अपने ही शौक़की ख़ता, अपनी ही आँखका क़ुसूर ।
वह तो उठा चुका नक़ाब, हम न नज़र उठा सके ॥

---

१. दर्दसे परिचित, २. भवोंपै, ३. अभिलाषा रूपी प्रार्थना ४. दामन तक, ५. अभिलाषा व्यक्त, ६. जीवनके सुखोंमें, ७. ताला-सा ।

निज़ामे-दहरकी[1] बुनियाद इस उसूलपै है।
कि उसमें फ़र्द[2] तो फ़ानी[3] है अंजुमन[4] बाक़ी ॥
अमल-अमल ही रहेगा सिला मिले-न-मिले।
ज़बाने-ख़ल्क पै[5] है नामे-कोह-कन[6] बाक़ी ॥

वोह तग़ाफ़ुलकी[7] नज़र जाने-तवज्जुह[8] बन गई।
मैंने यह ज़ाहिर किया, जैसे कि मैं माइल[9] नहीं ॥
अश्क तो वोह है जो दामनको बनादे लाला-ज़ार।
आस्तींका दाग़ बन जाना तो कुछ मुश्किल नहीं ॥

लब पै आती है जो हँसी बनकर।
एक ऐसी भी आह है प्यारे!
इश्क़में वोह भी एक वक्त है जब—
बेगुनाही गुनाह है प्यारे!
और 'मुल्ला'को क्या मिटाते हो?
वह तो यूँ ही तबाह है प्यारे!

जफ़ा[10] सैयादकी अहले-वफ़ाने[11] रायगाँ[12] कर दी।
क़फ़सकी[13] ज़िन्दगी वक़्फ़े-ख़याले-आशियाँ[14] कर दी ॥
यह दिल क्या है किसीको इम्तिहाने-ज़र्फ़ लेना था।
तने-ख़ाकीमें इक छोटी-सी चिनगारी निहाँ कर दी ॥

---

१. विश्व - व्यवस्थाकी, २. व्यक्ति, ३. नाशवान, ४. महफ़िल, ५. जनताकी जिह्वापर, ६. फ़रहादका नाम, ७. उपेक्षाकी, ८. प्रेयसीकी तवज्जह, ९. अनुरक्त १०. अत्याचार, ११. नेकी वालोंने, १२. व्यर्थ, १३. क़ैदका जीवन, १४. घोसलोंके खयालमें समर्पित ।

भरम हुस्ने-हक़ीक़तका कोई खुलने नहीं देता।
नज़र जब सामने आई तजल्ली दरमियाँ कर दी॥

तेरी बेमहरियाँ[१] आख़िर वोह नाज़ुक वक्त ले आई।
कि अपनोंकी मुहब्बत भी तबीअत पर गिराँ[२] कर दी॥
असीर[३] आँखें कहाँसे सैरे-गुलशनके लिए लायें।
नज़र जितनी भी थी सर्फ़े-तलाशे-आशियाँ[४] कर दी॥

ख़िरदकी[५] मुद्दतोंकी मेहनतोंपर गिर पड़ी बिजली।
किसीने हँसके सूए-दिल नज़र फिर नागहाँ कर दी॥
वही है मर्दे-रहरौ[६] ख़ारज़ारे-ज़ीस्तमें[७] जिसने।
ज़रा आसान-तर पहलेसे राहे-कारवाँ[८] कर दी॥

कबतक किसीसे माँगके हम इख़्तियार लें?
अब जी में है कि शेरसे लड़कर कछार लें॥

१९३८ ई०

तूने फेरी लाख नरमीसे नज़र।
दिलके आईनेमें बाल आ ही गया॥
ग़म भी है इक पर्दए-इज़हारे-शौक़।
छुपके आँसूमें सवाल आया ही गया॥

---

१. नाराज़ियाँ, २. बोझ, ३. क़ैदी, ४. घोंसलेकी खोजमें व्यय, ५. अक़्लकी, ६. वीरयात्री, ७. कण्टकाकीर्ण जीवनमें, ८. यात्रामार्ग,।

नये सितमकी न दे धमकियाँ हमें ऐ चर्ख़ !
वोह कौन बर्क़ है टूटी जो आशियाँ पै नहीं ?

मेरे जिगरकी ताब देख, रुख़की शिकस्तगी न देख।
फ़ितरते-आशिक़ी समझ क़िस्मते-आशिक़ी न देख ॥
तुझपै अयाँ[1] है राज़े-दिल, जानके बन न बेख़बर।
मानीए-ख़ामुशी समझ, सूरते-ख़ामुशी न देख ॥

१९३९ई०

ग़ैरके दर्द पै भी अश्क-बदामाँ[2] होना।
यही मेराजे-बशर[3] है, यही इन्साँ होना ॥
दिल तो सद-चाक[4] मगर लब पै तबस्सुम[5] है वही।
गुलसे सीखो चमने-दहरमें[6] ख़न्दाँ[7] होना ॥

अदना-सा इशारा भी है, जिसका मुझे इक हुक्म।
उसपर मेरी आहोंका असर कुछ भी नहीं क्या ?
माना मेरे जलनेसे न आँच आयेगी तुमपर।
लेकिन मेरे जलनेमें ज़रर कुछ भी नहीं क्या ?

दो गुल क़फ़समें रखके न सैयाद दे फ़रेब।
देखा ही जैसे हमने नहीं आशियाँ कभी ॥

जब दिलमें ज़रा भी आस न हो, इज़हारे-तमन्ना कौन करे ?
अरमान किये दिल ही में फ़ना, अरमानको रुसवा कौन करे ?
ख़ाली है मेरा साग़र तो रहे, साक़ीको इशारा कौन करे ?
ख़ुद्दारिए-साइल[8] भी तो है कुछ, हरबार तक़ाज़ा कौन करे ?

---

१. प्रकट २. रोना, ३. मनुष्यादर्श, ४. छिदा हुआ, ५. मुसकान, ६. संसार-उद्यानमें, ७. मुसकराना, ८. भिक्षुकका स्वाभिमान।

आदाबे-मुहब्बत भी है अजब, दो दिल मिलनेको राज़ी हैं।
लेकिन यह तकल्लुफ़ हाइल है, पहला वोह इशारा कौन करे ?

कटा है नासेहे-मुशफ़िक़से[1] गुफ़्तगूमें जो वक़्त।
उसे तू ज़ीस्तकी[2] मीयादमें शुमार न कर॥

नज़र झूटी, शबाब[3] अन्धा, वोह हुस्न एक नक़्शे-फ़ानी[4] है।
हक़ीक़त है तो हो लेकिन अभी मानी नहीं जाती॥
नज़र जिसकी तरफ़ करके निगाहें फेर लेते हो।
क़यामत तक फिर उस दिलकी परेशानी नहीं जाती॥

१९४० ई०

हिज्रकी[5] शब घड़ी-घड़ी दिलसे यही सवाल है।
जिसके ख़यालमें हूँ गुम उसको भी कुछ ख़याल है॥
हायरी बेबसी-ए-शौक़ दिलका अजीब हाल है।
उसका जवाब सुन चुका फिर भी वही सवाल है॥
बात उन्हींकी मानली जैसे मैं ही ख़ता पै था।
उनको कहीं यह शक न हो दिलमें मेरे मलाल है॥

भला मेरी यह हिम्मत थी कि तुमसे अर्ज़े-दिल करता।
जबीने-बे-शिकन[6] देखी तो कुछ कहनेकी ताब आई।
मुझे धोका न देती हों कहीं तरसी हुई नज़रें।
तुम्हीं हो सामने या फिर वही तसवीरे-ख़्वाब आई ?

---

१. हितैषी उपदेशकसे, २. ज़िन्दगीकी, ३. यौवन, ४. मिटनेवाला चिह्न, ५. विरह रात्रिमें, ६. बल रहित मस्तक।

१९४१ ई०

ख़ुशीमें अपनी ख़ुश-बख़्ती कहाँ मालूम होती है।
क़फ़समें जाके क़द्रे-आशियाँ मालूम होती है॥

१९४२ ई०

दयारे-इश्क़ है यह, जर्फ़े-दिलकी जाँच होती है।
यहाँ पोशाकसे अन्दाज़ए-इन्साँ नहीं होता॥
मुहब्बत तो बजाये ख़ुद इक ईमाँ है अरे 'मुल्ला'!
मुहब्बत करनेवालेका कोई ईमाँ नहीं होता॥

१९४३ ई०

अ़क्लके भटके हुओंको राह दिखलाते हुए।
हमने काटी ज़िन्दगी दीवाना कहलाते हुए॥

१९४४ ई०

देख वफ़ाए-इश्क़का एक यही उसूल है।
लमहे करमके याद रख, साल जफ़ाके भूल जा॥

मुझे करके चुप कोई कहता है हँसकर—
"इन्हें बात करनेकी आ़दत नहीं है॥"

१९४६ ई०

शमअ़ इक मोमके पैकरके सिवा कुछ भी न थी।
आग जब तनमें लगाई है तो जान आई है॥

एक-इक लमहेमें जब सदियोंकी सदियाँ कट गईं।
ऐसी कुछ रातें भी गुज़री हैं मेरी तेरे बग़ैर ॥

ज़ुल्माते-दैरो-काबामें[१] कुछ रोशनी-सी है।
शायद कोई गुनाह किये जा रहा हूँ मैं ॥

वोह करम[२] हो या हो सितम तेरा, जो हो मुझपै यूँ तो बुरा न हो।
तेरे मर्तबेसे भी कम न हो, मेरे ज़र्फ़से[३] भी सिवा न हो ॥
दिले-सब्रकुन तुझे चाहिए कि हो ख़स्तगीमें भी नग़मा-ज़न।
कि वोह आईना नहीं मोम है जो शिकस्ता हो तो सदा न हो ॥

१९४७ ई०

ग़म कितने कारवाँ[४] हुए ईमाँके नूरमें[५]।
अच्छे रहे जो सायए-उल्फ़तमें[६] आ गये।
वोह दिल फिर उसके बाद न तारीक[७] हो सका।
जिसमें दिये वोह अपनी नज़रसे जला गये ॥

काँटे चुननेसे क्या हासिल, इकबार मज़ाक़े-सब्ज़-ओ-गुल[८]!
जिसमें काँटे जम ही न सकें वोह सीरते-आबो-गुल[९] करदे ॥

ख़ुशीकी मआरिफ़त[१०] और ग़मकी आगही[११] न मिली।
जिसे जहाँमें मुहब्बतकी ज़िन्दगी न मिली ॥

---

१. मन्दिर-मस्जिदके अँधेरे में, २. कृपा, ३. पात्रतासे, ४. यात्रीदल, ५. मज़हबके प्रकाशमें, (धर्मान्धतामें) ६. प्रेमके अँधेरेमें, ७. बेरोशन, ८. फूल-पत्तियोंसे सुरुचि रखने वाले, ९. फूलोंका स्वभाव, १०. परख, ११. जानकारी।

यह कहके आख़िरे-शब शमअ़ हो गई ख़ामोश—
"किसीकी ज़िन्दगी लेनेसे ज़िन्दगी न मिली ।।"
फ़लकके तारोंसे क्या दूर होगी ज़ुल्मते-शब[1] ।
जब अपने घरके चिराग़ोंसे रोशनी न मिली ।।
वोह क़ाफिले कि फ़लक जिनके पाँवका था ग़ुबार ।
रहे - हयातसे[2] भटके तो गर्द भी न मिली ।।
वोह तीरह-बख़्त[3] हक़ीक़तमें है जिसे 'मुल्ला' !
किसी निगाहके सायेकी चाँदनी न मिली ।।

१९४८ ई०

किसी बर्गे-ज़र्दका ज़िक्र क्या मेरी आँखमें है वोह जोशे-गुल ।
मेरे दुश्मनोंकी ख़िज़ाँको भी जो नवेदे-अब्रे बहार[4] दे ।।
किसी आस्माँ पै इरम[5] लिये कोई मुन्तज़िर है तो मुझको क्या ।
वोह मेरा ख़ुदा है जो ख़ुल्दको[6] इसी ख़ाकदाँ पै उतार दे ।।

१९४९ ई०

निज़ामे-मैकदा साक़ी ! बदलनेकी ज़रूरत है ।
हज़ारों हैं सफ़ें जिनमें न मै आई न जाम आया ।।
बहार आते ही ख़ूँ रेज़ी हुई वोह सहने - गुलशनमें ।
ख़िजल काँटे थे यूँ फूलों कोजोशे इन्तक़ाम आया ।।
न जाने कितनी शमएँ गुल हुईं कितने बुझे तारे ।
तब इक ख़ुरशीद इतराता हुआ बालाए-बाम आया ।।

---

१. रात्रिकी अँधियारी, २. जीवन- मार्गसे, ३. अभागा, ४. नवीन बहारका सन्देश, ५. जन्नत, ६. जन्नतको ।

ख़बर नहीं कि है क्या वजहे-पारसाईए-शेख़ ?
गुनाह हो न सका या गुनाह कर न सके ?

१९५० ई०

सीनेकी हरारतसे ख़ाली गरमीए - चिराग़े - शाम न ले।
यह दिल है अमानत दुनियाकी, अपना ही बस इससे काम न ले।।
मै सबको न हो तक़सीम अगर, अपना भी उलट दे पैमाना
यह कुफ़्र है केशे-रिन्दीमें, साक़ीसे अकेले जाम न ले।।
पीने वाले अन्दाज़से पी, यह ज़हर भी है और अमृत भी।
कैफ़े - ऐयामके धोकेमें दीवानगिए - ऐयाम न ले।।
या दिलमें न दे नफ़रतको जगह या हर्फ़े-मुहब्बत लबपै न ला।
यह नाम न ले, लेता है तो फिर, यह नाम बराये नाम न ले।।
इस अहदे-ख़िरदके मैदाँमें, कुछ भी न मिले लाशोंके सिवा।
गिरते हुए मज़रूबोंको[1] अगर आग़ोशे-मुहब्बत थाम न ले।।
कबतक तरतीब युँ ही होगा, हर-एक फ़िसाना हस्तीका।
अल्लाहको नीद आती ही रहे, शैतान कभी आराम न ले।।
इस मैको न पी क़तरा-क़तरा, गिन-गिनके न ले साँसें अपनी।
जीना है तो जी जीनेकी तरह, जीनेका फ़क़त इल्ज़ाम न ले।।

सोज़ो-ना तमाम

मुझे समझ न किसी दीदए-ग़रीबका अश्क[2]।
जो लबतक आ न सकी है, वोह इल्तिजा[3] मैं हूँ।।

---

१. घायल, जिसपर चोट पड़ी हो, २. ग़रीबकी आँखका आँसू, ३. प्रार्थना।

वोह कौन हैं जिन्हें तौबाकी मिलगई फ़ुरसत ।
हमें गुनाह भी करनेको ज़िन्दगी कम है ॥

चश्मे-रंगींकी बहारें भी तसद्दुक़[1] उसपर ।
वोह जो लज़्ज़त-सी है इक अश्कके पी जानेमें ॥

जहाँमें मर्द वही है जो यह शआ़र करे ।
छुपाये ग़मको, मसर्रतको आश्कार करे ॥

ज़ीस्तको ज़ीस्तकी मेराजपै लानेके लिए ।
ग़म है इन्सानको, इन्सान बनानेके लिए ॥

तारीक कितनी रातें, कितनी सियाह घड़ियाँ ।
ग़ममें तेरी कटी हैं, अश्कोंकी चाँदनीमें ॥

मैं अपनी ख़ामिए-उल्फ़त पै[2] हूँ ख़जिल[3] क्या-क्या ।
वोह याद आये तो उनकी जफ़ा भी याद आई ॥

सितम-पर-सितम कर रहे हैं वोह मुझपर ।
मुझे शायद अपना समझने लगे हैं ॥

दिल दुःखे जिससे वोह हँसी क्या है ?
जो रुलादे वोह दिल-लगी क्या है ?

हँसते थे ज़मानेको हम-दर्द समझकर हम ।
अब अपने अक़ीदेपर, हँसनेका ज़माना है ॥

---

१. न्योछावर, २. प्रेमकी कमी पै, ३. शर्मिंदा ।

तशद्दुदको तशद्दुद[1]से दबालें यह तो मुमकिन है।
मगर शोलाको[2] शोलेसे बुझाया जा नहीं सकता॥

जलके भी अन्धे पतंगोंको न कुछ अक़्ल आई।
आज भी शमअ़की है गर्मिए-बाज़ार वही॥

कभी मौजे-दरियाने मुड़कर न देखा।
सफ़ीना[3] लगा कौन थककर किनारे॥

ज़िन्दगी यह कहके दी, रोज़े-अज़ल[4], उसने मुझे—
"यह हक़ीक़त ग़मकी ले, और राहतोंके ख़्वाब देख॥"

मैं अब भी मनसबे-उलफ़तके अह्ल हूँ कि नहीं?
अदूको मैंने तेरा नाम लेके प्यार किया॥

हरीफ़[5] बनके मुक़ाबिलमें आ सका न जहाँ।
तो दोस्त बनके पसे-पुश्त[6] आके वार किया॥

मुहब्बत गिराया ही की दिलपै पर्दे।
वोह ख़ुद आगये सामने छुपते-छुपते॥

न जाने कितने दिलोंके चिराग़ गुल करके।
तेरी निगाह सितारोंको नूर देती है॥

तेरी जफ़ाको भी समझा निगाहे - दर - पर्दा।
कहाँ-कहाँ दिले-शैदाने आसरा ढूँढ़ा॥

---

१. हिंसासे, दबावसे, २. आगको, ३. नौका, ४. सृष्टिके प्रारम्भमें, ५. शत्रु, ६. पीठ पीछेसे।

मुहब्बत इक पयामे-मर्ग औरोंके लिए होगी।
मुझे तो ज़िन्दगी-ही-ज़िन्दगी मालूम होती है ।।

ख़ुशीके सैकड़ों ख़ाके बनाये अहले-दुनियाने।
मगर जब ख़द्दो-ख़ाल उभरे वही तसवीरे-ग़म आई ।।

मरते-मरते जी उठे शायद कोई।
तुम मिलाकर आँख हामी भर तो-दो ।।
रफ़्ता-रफ़्ता राहपर आजायेंगे।
शेख़जीको शरबते-कौसर तो दो ।।
इश्क़के कबतक युँ ही देखेंगे ख़्वाब।
आओ 'मुल्ला' ओखलीमें सर तो दो ।।

चन्द और फुटकर अशआर

मैकशोंने पीके तोड़े जामे-मै।
हाय वोह साग़र जो रक्खे रह गये।।

हर शोरिशे-हयातने[1] बदज़न बना दिया।
दुनियाको अहले-अम्नने[2] मदफ़न बना दिया ।।

दिल बुझा शमए-काएनात गई।
ज़िन्दगीकी उजाली रात गई ।।

---

१. जीवन-संघर्षने, २. शान्तिवादियोंने।

दिलका चिराग़ जब तलक तुझसे जले जलाये जा।
रात भी है अगर तो क्या, रातको दिन बनाये जा॥

सरे-महशर यही पूछूँगा ख़ुदासे पहले—
"तूने रोका भी था मुजरिमको ख़तासे पहले?"
उड़ गया जैसे यकायक मेरे शानोंपरसे।
वोह जो इक बोझ था तसलीमे-ख़तासे पहले॥

अरमाँको छुपानेसे मुसीबतमें है जाँ और।
शोलाको दबाते हैं तो उठता है धुआँ और॥

अश्क बनकर आई हैं वोह इल्तिजाएँ[1] चश्म तक।
जिनके कहनेके लिए होंटोंपै गोयाई[2] नहीं॥

तेरी उजड़ी हुई जन्नतको बसानेवाला।
वही ग़ुस्सेमें निकाला हुआ इन्साँ निकला॥

अभी शबाब है करलूँ ख़ताएँ जीभरके।
फिर उस मुक़ामपर उम्रेरवाँ मिले-न-मिले॥

इसीका नाम जीना है, जिगर ख़ूँ हो तो हो जाये।
नक़्शे-दहरमें[3] इक ख़ास अपना रंग भरता जा॥

मेरी बातों पै दुनियाकी हँसी कम होती जाती है।
मेरी दीवानगी शायद मुसल्लम होती जाती है॥

---

१. प्रार्थनाएँ, इच्छाएँ, २. कथन-शक्ति, ३. संसारके मानचित्रमें।

अभी सुनलो तो शायद सुन सको तुम दिलके नग़्मोंको ।
कि अब उसकी सदा कुछ ख़ुद-ब-ख़ुद कम होती जाती है ।।

न शाख़में यह कहीं सूख जायें फूल मेरे ।
जो तोड़ना हो तो अब तोड़ इन्तिज़ार न कर ।।
मआले-ज़ीस्तसे[1] घबराके कर न ख़ूने-शबाब[2] ।
ख़िज़ाँके ख़ौफ़से रुसवाइए-बहार न कर ।।

अब और इससे सिवा चाहते हो क्या 'मुल्ला' !
यह कम है उसने तुम्हें मुसकराके देख लिया ।।

इश्क़ करना है तो फिर इश्क़की तौहीन न कर ।
या तो बेहोश न हो, हो तो, फिर न होशमें आ ।

मुझे यह डर कहीं कुछ कह न दे नज़र तेरी ।
उन्हें गिला कि पयामे-नज़र ज़बाँ पै नहीं ।।

यह तो ठीक है कि तेरी जफ़ा भी है इक अता[3] मेरे वास्ते ।
मेरी हसरतोंकी क़सम तुझे कभी मुसकराके भी देख ले ।।

मैं आज ही उसे क्यों सर्फ़े-दिल[4] न कर डालूँ ।
यह ख़ूँकी बूँद मुझे, कल यहाँ मिले-न-मिले ।।

---

१. ज़िन्दगीके परिणामसे, २. यौवनका नाश, ३. देन, ४. हृदयके लिए व्यय ।

वोह भी आते हैं बनके शक्ले-बहार।
वोह जो ख़ूने-बहारके दिन हैं॥

अपने जी में यह कि दुनिया छोड़ दें।
और दुनियाको हमींसे काम है॥

कुछ भी कहनेकी मुझे, उनसे ज़रूरत न पड़ी।
आ गया काम मेरा बे-सरो-सामाँ होना॥

उसीको जिसने न की भूलकर भी बात कभी।
बग़ैर याद किये कट न सकी रात कभी॥
बस एक फूल नुमायाँ है दिलके दाग़ोंमें
यहाँ रुकी थी तेरी चश्मे-इल्तिफ़ात[1] कभी॥

जो गुल थे, क़ब्र उन्होंने सँवारी ग़रीबकी।
जो नंगे-गुल थे ज़ीनते-दस्तार हो गये॥

सूखने पाये न दिलमें देख ख़ूए-आरज़ू[2]।
सैकड़ों दरिया तुनकआबीसे[3] सहरा[4] बन गये॥

तुम जिसको समझते हो कि है हुस्न तुम्हारा।
मुझको तो वह अपनी ही मुहब्बत नज़र आई॥

सख़्तिए-ज़ीस्त[5] इश्क़से दूर न हो सकी मगर।
फूल तो कुछ खिला दिये, दामने-कोहसारमें॥

---

१. कृपादृष्टि, २. अभिलाषाका अभ्यास, ३. थोड़े पानीसे, ४. जंगल, ५. जीवनकी मुश्किलें।

जब कभी अम्नकी[1] इन्साँने क़सम खाई है।
लबे-इब्लीसपै[2] हलकी-सी हँसी आई है॥

रुकती नहीं किसीके लिए मौजे-ज़िन्दगी।
धारेसे जो हटे वोह किनारेपै आगये॥

मरीज़े-ग़मको तसल्लियोंसे कहीं सिवा दे रहा है तसकीं[3]।
वोह इक चमकता हुआ-सा-आँसू जो दीद-ए-चारासाज़में[4] है॥

तू ख़फ़ा और बहारके दिन हैं।
अरे ज़ालिम यह प्यारके दिन हैं॥

इश्क़में क्या सवाले-ख़ुद्दारी[5]।
जाने कै बार अपनी बात गई॥

नज़र फिरती थी वोह पहले भी लेकिन यूँ न फिरती थी।
कुछ अबकी ख़त्म होती दास्ताँ मालूम होती है॥

दिल डूब गया होता, ऐ जोशे-ग़मे-उलफ़त[6]!
आँसू नहीं आँखोंमें उलचा हुआ पानी है॥

---

१. शान्तिकी, २. शैतानके मुँहपर, ३. तसल्ली, ४. चिकित्सककी आँखमें, ५. स्वाभिमानका प्रश्न, ६. प्रेम-व्यथाका उद्वेग।

मेरा ग़म देखकर, मैं और तुमसे कुछ नहीं कहता।
अगर यह हो सके तुमसे तो पी जाना हँसी अपनी॥

वोह तो कहो कि आई क़फ़स तक भी बूए-गुल।
वरना भुला दिया था हमें तो बहारने॥

तेरे कूचेमें सब मुश्ताक़[1] इक जल्वेके बैठे हैं।
नज़रवाले, जिगरवाले, क़लमवाले, ज़बाँवाले॥

मुझे समझाने आये हैं कि मैं रोनेसे बाज़ आऊँ।
मेरे समझाने वालोंकी नज़र नम होती जाती है॥

नज़्मोंके नमूने—

अब हम मुल्ला साहबकी चन्द नज़्मोंके एक-दो बन्द बतौर नमूना पेश कर रहे है। उमास्वाति आचार्य्यने कितने संक्षेपमें एक तथ्यका उल्लेख किया है—

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

अर्थात्—संसारमें हर-एक एक-दूसरेके काम आता है। यदि परस्पर-का यह आदान-प्रदान न हो तो संसारके सभी कार्य ठप हो जाये। जीवन-की सार्थकता इसीमे है कि वह किसीके काम आये। इसी भावके द्योतक मुल्लासाहबकी 'जामे-हयात' नज़्मके दो शेर मुलाहिज़ा हो—

सूँघकर कोई मसल डाले तो यह है गुलकी ज़ीस्त[2]।
मौत उसके वास्ते डाली पै कुम्हलानेमें है॥

---

१. प्रतीक्षामें, अभिलाषामें, २. ज़िन्दगी।

हैफ़ उस मैपर कि रात आख़िर[1] हुई और वह अभी।
इन्तिज़ारे-रिन्दमें[2] लबरेज़ पैमानेमें[3] है॥

बेसवा—

समाजके इस दयनीय अंगका उल्लेख मुल्ला साहबने उसीके मुँहसे कितना करुण और नग्न कराया है—

—१३ में-से ४—

....

मुझ-सी बदक़िस्मत ज़मानेमें कोइ लड़की नहीं।
माँ की उल्फ़त, बापकी सूरत कभी देखी नहीं॥
कौन शै मासूमियत[4] है, यह मैं समझी ही नहीं।
मेरे अहदे-ज़ीस्तमें[5] दीबाच-ए-तिफ़्ली[6] नहीं॥
ख़ाको-ख़ूँमें गौहरे-फ़ितरत[7] मेरा रुलता रहा।
हुस्न मेरा गाहकोंकी आँखमें तुलता रहा॥

जब मुरादोंपर ज़रा मेरा शबाब[8] आने लगा।
इक ज़रा नज़रोंमें मेरी जब हिजाब[9] आने लगा॥
कुछ समझमें जब तमन्नाका हिसाब आने लगा।
जागती आँखोंमें इक उलफ़तका ख़्वाब आने लगा॥
मजमए-उश्शाक़में[10] सरगोशियाँ[11] होने लगीं।
खुल गया नीलाम मेरा बोलियाँ होने लगीं॥

---

१. समाप्त, २. सुरासेवीकी प्रतीक्षामें, ३. प्यालेमें लबालब भरी हुई ४. भोलापन, ५. जीवनरूपी पुस्तकमें, ६. बचपन रूपी भूमिका, ७. मोती-जैसी प्रकृति, ८. यौवन, ९. हया, शर्म, १०. आशिक़ोंके समूहमे, ११. काना-फूसी, चरचाएँ।

हुस्नको तसख़ीर[1] करने इश्क़ेबद्‌बीं[2] आगया।
अपनी नजरोंमें लिये पैग़ामे-शीरीं[3] आगया॥
बुल-हवस सैयाद[4] लेकर दामे-ज़र्रीं[5] आगया।
गुल अभी खिलने न पाया था कि गुलचीं आगया॥

आँख जब खोली तो देखा आबरू बाक़ी न थी।
वक़्त जब खिलनेका आया गुलमें बू बाक़ी न थी॥

जब मेरे हुस्नो-जवानीसे दिल उनके भर गये।
या जब अपना नामो-मालो-ज़ोरो-ज़र सब हर गये॥
अपने-अपने ऐब सारे मेरे ज़िम्मे धर गये।
मुझको मेरे चाहनेवाले ही रुसवा कर गये॥

बारे-इसियाँ[6] एक आलमका मेरी गर्दनपै है।
दाग़ यह मेरा नहीं है जो मेरे दामनपै है॥

जहाँ मैं हूँ—

—१७ में-से ३—

अपने देशके दूषित वातावरण और रक्तलोलुप देशवासियोंके सम्बन्धमें लिखते हुए कहते है—

वही हिर्सो-हविस[7]का तंग-ज़िन्दाँ[8] है जहाँ मैं हूँ।
वही इन्साँ, वही दुनियाए-इन्साँ है जहाँ मैं हूँ॥

....

१. क़ाबूमें लाने, फ़तह करने, २. कामुक प्रेम, ३. मधुर सन्देश, ४. विषयासक्त, अहेरी, ५. सुनेहरा जाल, ६. पापोंकी गठरी, ७. ईर्ष्या-तृष्णाका, ८. संकुचित कारागृह।

कभी शायद फ़रिश्ता आदमे-खाकी भी बन जाये।
अभी तो भेसमें इन्साँके शैताँ है जहाँ मैं हूँ॥
किसी क़ीमत पै भी इन्सानियत ढूँढ़े नहीं मिलती।
मगर जिन्से-ख़ुदाई अब भी अरज़ाँ[1] है जहाँ मैं हूँ॥

अंग्रेज़-जर्मन द्वितीय युद्धमें सहयोग देनेसे देशकी प्रतिनिधि संस्था काग्रेसने कतई इन्कार कर दिया था। फिर भी चाँदीके टुकड़ोंके लालचमें अनेक भारतीय अपनी जान होम रहे थे। उन्हींके सम्बन्धमें लिखा था—

–१६ मैं-से ४–

कटे जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं।
यह नादान इन्साँ लड़े जा रहे हैं॥
कोई उनसे पूछे लड़ाई यह क्यों है?
मज़ाक़े-नवर्द-आज़माई[2] यह क्यों है?
नहीं जानते पर लड़े जा रहे हैं।
कटे जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं॥

अदू[3] कौन है और हिमायत है किसकी?
ख़ुसूमत[4] है किससे रक़ाबत है किसकी?
मिटाना है किसको हिफ़ाज़त है किसकी॥
नहीं जानते पर लड़े जा रहे है।
कटे जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं॥

....

१. सस्ता, २. युद्धके खेलका प्रदर्शन, ३. शत्रु, ४. लड़ाई, ६. शत्रुता।

सदाक़तपै[1] उट्ठी है तलवार किसकी ?
है इक दामे-तज़वीर[2] गुफ़्तार किसकी ?
जो जीते तो इसमें हुई हार किसकी ?

नहीं जानते पर लड़े जा रहे हैं।
कटे जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं ॥

कमी है न ग़ल्लेकी खेतोंमें कोई।
तरक़्क़ी पै है इल्म और आगही[3] भी।
जहाँकी ज़रूरतको हर शै है काफ़ी।

बशर फिर भी भूके मरे जा रहे हैं।
कटे जा रहे हैं, मरे जा रहे हैं ॥

क़हते कलकत्ता—

–९ में-से १–

है मगर क़हर यह बे मौत बुलाई हुई मौत।
नातवानों पै[4] तवानाओंकी[5] लाई हुई मौत ॥
शह-नशीनोंसे[6] ज़मीनोंपै गिराई हुई मौत।
चोर-बाज़ारके सिक्कोंकी चलाई हुई मौत ॥

क़त्ल करदे किसी बेकसको हलाकू जैसे।
लूटले ख़ानए-बेवा[7] कोई डाकू जैसे ॥

---

१. सचाई पै, २. फ़रेबका जाल, ३. ज्ञान, ४. निर्बलोंपर, ५. बलवानोकी, ६. ऊपरसे, ७. बेवाका घर।

गुल करदो कमरको

मुक्त छन्दमें कही गई ६६ पंक्तियोंकी नज़्मका एक नमूना—

ऐ काश बुझादे कोई क़न्दील-क़मरकी[1] ।
ऐ अब्रके पारे
इस चाँदको ढक दे
क्या जानिए कबसे यह मुझे घूर रहा है
पेड़ोंकी घनी डालोंमें गह ख़ुदको छुपा कर
गह सामने आकर
नज़रोंमें मेरी अपनी निगाहोंको चुभोकर ।
गुस्ताख़ कहींका
बेशर्मकी भूलसे झपकती भी नहीं आँख
और इतनी बड़ी आँख
जैसे कि है इक घाव-सा सीनेमें फ़लकके[2]
जिसमें-से रवाँ[3] एक सुनहरी-सा लहू है
इक गोशेमें इसके

लाल क़िला

–२५ में-से ६–

आज़ाद हिन्द फ़ौजके मुक़दमेपर १६४६ में लिखी गई नज़्म—

रोकेगा तुझे अब कौन वतन ! खोई हुई अज़मत[4] पानेसे ?
फिर लाल क़िलेकी दीवारें दोहराती हैं अफ़साने-से ॥
आज़ाद वतनके परचममें[5] हर रंगके रिश्ते सिल ही गये ।
जय हिन्दके मरक़जपर[6] आकर जितने ख़त थे सब मिल ही गये ॥

१. चाँदकी, २. आकाशके, ३. प्रवाहित, ४. प्रतिष्ठा, ५. झण्डेमें, ६. केन्द्रपर,

फिर आज़ादीका परचम इन दीवारोंपर लहरायेगा।
वह दिन आयेगा, जल्द आयेगा और यक़ीनन आयेगा॥

इनसानी दरिन्दे —१५ में-से ५—

१९४७ के साम्प्रदायिक रक्त-पात पर—

किसको मजलूम[1] कहें, किसको सितमगार[2] कहें।
आज मजलूम वही, कल है सितमगार वही॥
कितने आबाद हैं नफ़रत-कद-ए-दैरो-हरम[3]।
हम-पियाला जो कभी थे यह है मैख़्वार[4] वही॥
आज किस सतह पै है जेहनियते-आम[5] अफ़सोस।
रोकता है जो ख़ताओंसे ख़ताबार वही॥
जो तशद्दुदका[6] करे ज़िक्र वही क़ौम-परस्त।
नाम भूलेमे जो ले अम्नका[7] ग़द्दार वही॥
फ़िरक़ा-दाराना हकीमोंकी दवासे हुश्यार।
भेसमें आज मुआलिजके[8] है बीमार वही॥

सरोजनी नायडू— —१४ में-से १ बन्द—

जहाँ मिली है हदे-काब-ओ-सनम-ख़ाना
जहाँ पै ख़त्म है हर तफरक़ेका अफ़साना॥
वहाँ थी तू मुतरन्नम दिलोंकी सुलताना।
ज़बाने-शेख़ो-लबे-बरहमन सलाम तुझे॥

[२० अगस्त १९५३ ई०]

---

१. अत्याचार पीड़ित, २. अत्याचारी, ३. घृणा उत्पन्न करनेवाले मंदिर-मस्जिद, ४. मद्यप, ५. जनताकी रुचि, ६. हिंसाका, ७. सुलह-शान्तिका, ८. चिकित्सकोंके।

फ़िराक़ गोरखपुरी

हज़रत फ़िराक़ गोरखपुरी लिखते है--

"सन् १८९६ में शहर गोरखपुरमें पैदा हुआ। यह श्रीवास्तव कायस्थोका खानदान पूरे चारसौ बरससे ज़िला गोरखपुरमें आबाद है। मेरे बुज़ुर्गोको ५ गाँव शेरशाहके दिये हुए इसी ज़िलेमें आबाद है और हम लोग पंचगावाँ के कायस्थ कहलाते है। मेरे पिता मुंशी गोरखप्रसाद 'इबरत' चोटीके वकीलोंमें थे, और उनका नाम हाली और आज़ादके साथ-साथ जदीद (वर्तमान युगीन) उर्दू-शाइरीकी तारीखमें लिया जाता था। मेरी तालीम घरपर शुरू हुई। स्वर्गीय पिताजीकी शिक्षा तो अरबी-फ़ारसीकी व्यवस्थित रूपसे हुई और जब इन ज़बानोपर अधिकार हो गया, तब अँग्रेज़ी और वकालत पढ़ी। लेकिन अब ज़माना बदल चुका था। उर्दूकी दो-तीन किताबे खत्म करनेके बाद अँग्रेज़ीकी बा क़ायदा तालीम शुरू हो गई।

एफ़०-ए० का इम्तिहान फ़ारसीके साथ दिया, लेकिन बी० ए० में फ़ारसी छोड़ दी। ·· ··· बचपन ही से खुशक़िस्मती या बदक़िस्मतीसे तबीअत बहुत हस्सास (भावुक) थी। सूरदासके भजन, तुलसीदासकी रामायण खास तौरसे प्रभावित करते रहे।

जो उर्दू-अशआर या नज़्में, दर्सी किताबो (पाठ्य-पुस्तको) या दूसरी किताबोमें या लोगोकी ज़बानी सुननेके मौक़े मिलते थे। वे बहुत कुछ तो खुश्क और करख्त (शुष्क और कर्ण-कटु) और बेरस चीज़े मालूम होती थीं। लेकिन उनमें जो अशआर मुतरन्नम (मधुर) होते थे, वे दिलमें डूब जाते थे और चूँकि हमारे रोज़मर्रहकी बोलीमें होते थे, इसी-लिए ऐसे अशआरका असर बहुत होता था। कुछ नज्में और ग़ज़ले

वालिद मरहूमकी बचपन ही से विरदे-ज़बान (कंठस्थ) रहती थीं और कुछ दूसरोंकी।

इसके साथ ही साथ वे कहानियाँ, वे वाक़ए, वे मनाज़िर (दृश्य) बहुत मुतास्सिर (प्रभावित) करते थे ; जिनमें मेरी बचपनकी ज़ेहनियत (प्रकृति) कोई बात पाती थी। इन्सानी हुस्नका असर तो यह होता था कि बयक वक्त मौत और ज़िन्दगीका गोया सामना हो जाता था। इसके साथ-साथ ग़ुस्सा और नफ़रत कुछ लोगोंसे और कुछ बातोंसे मेरे लिए नाक़ाबिले-बर्दाश्त और बे-मुज़िर (असहनीय और हानि रहित) चीज़ें थीं। जितनी शदीद (अधिक) मुहब्बत थी, उतनी ही शदीद नफ़रत भी। या जितना तेज हुस्न (खूबी) का एहसास था, उतना ही तेज़ कुबह (बुराई) का एहसास था। ...... घबराहट, बेसब्री और तनहाईका एहसास भी शुरू ही से इतना तेज़ था कि अब तक फ़ैसला न कर सका कि इसको क्या कहूँ ? करीब-करीब पैंतीस बरसके मजमूई तास्सुरात (स्वभाव सम्बन्धी भाव) शायद मेरे इन दो-चार अशआरमें ज़ाहिर हो गये हों—

इसी दिलकी क़िस्मतमें तनहाइयाँ थीं ?
कभी जिसने अपना-पराया न जाना ॥
हज़ार ग़म हों, नहीं चाहता कोई लेकिन—
कि इसके बदले कोई और ज़िन्दगी होती ॥
ऐ साकिनाने-दहर यह क्या इज़्तिराब है ?
इतना कहाँ ख़राब जहाने-ख़राब है ॥
तर्के-मुहब्बत करनेवालो कौन बड़ा जग जीत लिया ?
इश्क़से पहलेके दिन सोचो कौन ऐसा सुख होता था ?

बहर हाल यह सब बातें पसे-पर्दा होती रहीं और रस्मी-तालीम जारी रही और दबे पाँव ज़िन्दगी-नुमा मौत यानी जवानी भी आ गई।

शादी भी हो गई और इज़दिवाजी (वैवाहिक) ज़िन्दगी इतनी नाखुश गवार साबित हुई कि मैं यह कह नहीं सकता कि उसने मुझे बिगाड़ दिया या बना दिया। शायद दोनो हालतोंमें ज़्यादा फ़र्क नहीं।

बी० ए० के इम्तिहानके बाद ही वालिद मरहूमका साया सरसे उठ गया और ग़मे-रोज़गारका बार (आर्थिक चिन्ताका बोझ) सरपर पड़ गया। डिप्टी कलेक्टरीकी मुलाजमत और यूनीवर्सिटीकी प्रोफेसरी बी० ए० के बाद ही मिल गई थी और आई० सी० एस० के लिए गवर्नरने नामज़द कर दिया था। लेकिन इजदिवाजी ज़िन्दगीकी तल्खी (दाम्पत्य-जीवनकी कड़ुवाहट) ने इतना बेदिल कर दिया था कि हुब्बे-वतन (देश-प्रेम) या झूटी-सच्ची ख़िदमते-वतन (देश-सेवा) मे पनाह लेना चाही। तमाम मुलाज़मतोंसे इन्कार करके कॉंग्रेसमे शामिल हो गया और क़ैदे-फ़िरग (कारागृह) की सैर भी की। यह सन् १९२७ ई० तकका ज़िक्र है। इसके बाद लखनऊके क्रिश्चियन कालेजमें, फिर कानपुर सनातन-धर्म कालेज, और अब इलाहाबाद यूनिवर्सिटीमें अंग्रेज़ीका लेक्चरार हूँ। बदनसीबियोंमें तक़दीरकी यह सितमज़रीफ़ी भी ज़रा काबिले-ज़िक्र है कि हर इम्तिहानमे चोटीकी कामयाबी हासिल होती रही, लेकिन खुश होनेकी नौबत नहीं आती थी। मुझसे ज़्यादा खुश वे होते थे, जो सिर्फ़ थर्ड डिवीज़नमें कामयाब होते रहे। मेरे लिए आज तक कामयाबी और खुशी एक चीज़ न हो सकी।

अच्छा अब लगे हाथों अपनी शाइरीके बारेमें कुछ गुजारिश (निवेदन) कर दूँ। जी तो बचपनसे ही शेर कहनेको चाहता था। लेकिन बचपनकी सलाहियतें (समझ, योग्यता) यह बार (बोझा) बर्दाश्त न कर सकती थीं। मेरे वालिद 'अमीर' मीनाईकी शाइरीसे मुतास्सिर (प्रभावित) न थे। लेकिन मेरे फूफी-जाद भाई मुंशी राजकिशोरलाल 'महर' जो मुझसे मुहब्बत करते थे, अमीर मीनाईकी शाइरीके बहुत दिल-दादा (प्रशसक) थे। अब मै जो ग़ौर करता हूँ तो बचपनसे अमीर

मीनाईकी शाइरीसे लगावका यह सबब पाता हूँ कि अमीरके कलाममें, उनकी लै में, ठहराव और बहावका एक ऐसा इम्तिज़ाज (संमिश्रण) है, जो ग़ैर शऊरी तौरपर (बिना प्रयासके) हम-आहंग (सहमत) करा देती थी।......

बहरहाल शेर कहनेके लिए झक मारा करता था और एक मिसरा भी मुझसे न होता था। लेकिन बी० ए० क्लास तक अमीर मीनाई ही की शाइरी और लबो-लहजा या यूँ कहिए कि उनके अशआरमें जो आवाज़ तहतुल-शेर (स्वाभाविकता) थी, उसीसे मुतास्सिर (प्रभावित) होता रहा। फिर 'अज़ीज़' लखनवी 'शाद' अज़ीमाबादी और 'नासिरी' मरहूम की सुहबतके असरसे मीर, दर्द, ग़ालिबकी आवाज़े मेरे दिलमें उतरती गईं। हसरत, असग़र, यगाना, इक़बालके कलामसे भी फ़ैज़-याब (लाभान्वित) होता रहा हूँ और फ़ारसी शुअरासे भी, साथ ही साथ अंग्रेज़ी अदबको भी अपने अन्दर यूँ तहलील करता (घोलता) रहा कि उसकी आवाज़ अपनी आवाज़में ढलती जाये, जब कहीं जाकर बी० ए० में पहली ग़ज़ल कही। यह १९१६ ई० की बात है। दो-चार ग़ज़लें 'नासिरी' मरहूमने देखीं। बादको दो-चार ग़ज़लें हज़रत 'वसीम' खैराबादीको दिखाईं। फिर किसीसे इस्लाह (संशोधन) लेनेकी नौबत न आई। बल्कि शाइरोंके बदले मजनूँ गोरखपुरी, प्रेमचन्द और हज़रत नियाज़ फ़तहपुरी नस्र-निगार (गद्यलेखक) हजरातकी सुहबतोंका ज़्यादा असर मेरी अदबी ज़िन्दगीपर रहा। हाँ जवानी, तनहाई और गुनाहे-इश्कका भी साथ रहा, और इसके जो नताइज हो सकते थे, वे भी होते रहे। सच पूछिए तो शेर कहनेका शुरूमें तो मुम्किन है शौक़ ही रहा हो। लेकिन जबसे जवाँ होकर ज़िन्दगीकी तल्खियो (कड़ुवाहटों) को, यानी लहूके घूँटको शीरो-शकर करके उतारना पड़ा। क़ल्ब (दिल) से शाइरी गोया ज़िन्दगीकी तलाशका एक ज़रिआ बन गई। शायद ज़िन्दगीको शेरमें तहलील करना (समोना) और शेरको

ज़िन्दगीका आईना बनाना मकसदे-ज़िन्दगी (जीवन-उद्देश्य) हो, कौन जाने ?

मेरे चन्द अहबाब (कुछ इष्ट-मित्र) शुरू ही से मेरी शाइरीकी एक खसूसियत (विशेषता) इत्तिहाद और इज्तिमाए-ज़िद्दैन (परस्पर विरोधी) और Paradoxy (असत्याभास) बताते है। मै पहले अर्ज़ कर चुका हूँ कि नफ़रतो-मुहब्बत, हुस्नो-कुब्हका शदीदतरीन एहसास करते (सौन्दर्य और कुरूपताके प्रति मुहब्बत और घृणाकी अनुभूति रखते) हुए हयात और काएनात (जीवन और संसार) पर मेरा ईमान काइम रहा। कुफ्र. और ईमान दोनों लिहाजसे वहदते-वजूदका क़ाइल (एक ईश्वरवादके प्रति विश्वासी) रहा। फिर तल्खी, नाकामी, हसरतोंका खून होना और जदलियत-पज़ीर होना वहदतका एहसास, इत्तिहादे-ज़िद्दैन (Reconciltiation of apposites) की सिफ़त मेरे विज़दान और मेरी शाइरीमें क्यो न पैदा कर देती ? मुझे तो ज़ख्म ही का मरहम बनाना था। फिर क्या करता ? अगर दर्द भरी आवाज़े सुकून (चैन) नहीं तो वह नग़मा कहाँ ? चीख हो गई।

मैं शाइरीमें लहजेको सबसे जरूरी चीज समझता हूँ, इसी लहजेमें शाइरकी शख्सियत छिपी हुई होती है। शाइरी तमाम आलमके दुःख-दर्दके एहसासको बग़ैर कम किये हुए अगर उसमें नर्मी और जुज़वे-बरकत समो सके तो उसमें कूबते शिफ़ा (Healing power) आ जाती है, और शायद यही चीज शाइरीको अज़मत दे सकती है[1]।"

हज़रत मुज्तबा हुसैन 'फ़िराक'के संस्मरणमें एक जगह लिखते हैं—

"वे बड़े पुर-यकीन (आत्मविश्वासी) आदमी हैं, उनमें अगर बाज़ औक़ात खुद-एतमादी (आत्मविश्वास) की कमी नज़र आने लगती है तो उसकी एक वजह यह भी है कि वे बयक वक्त (एक ही समय) बहुत बड़े शाइर और बहुत बड़े नाक़िद (समालोचक) है। उनके पेशे-नज़र अपना और दुनियाके तमाम बड़े अदीबो और शाइरो (लेखको-कवियो)

१. निगार जनवरी-फरवरी १९४१ ई० पृ० १५२-५४।

का अदब है। इसी अदबशिनासी (साहित्यिक-परिचय) की बदौलत शायद उन्हें अन्देशा (शक) होने लगता है कि कहीं नई नस्ल उनकी अज़ीम तामीरी कोशिशो और काविशोसे मुनकिर (भावी पीढ़ी उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियो और प्रयत्नोसे वेपर्वाह) न हो जाये। लिहाज़ा वे पेशबन्दीके तौरपर अपनी और दूसरोंकी शाइरीके बारेमें अजीबो-ग़रीब (विचित्र) बातें भी कह जाते है। अपना रंग छोड़कर कभी दूसरोंके रंगमें कहने लगते हैं। कभी एक नया रंग पैदा करनेके सिल्सिलेमें बिल्कुल बेरंग हो जाते है। कभी तूलानी (लम्बी) नज्मोकी तरफ़ रुजूअ (झुक) हो जाते है। कभी अदबके ऐसे नजरिये (साहित्यक दृष्टिकोण) पेश करने लगते है, जिनके वे खुद शदीद मुखालिफ़ (अति विद्रोही) है। और यह सब जतन वे अपनी शाइरीकी खातिर करते है। .. ..

'मजाज़'के बारेमें एक दिन बात करते-करते फ़िराक़ साहबने अपने बारेमें जो जुमला (वाक्य) कहा, वह मुझे हमेशा याद रहेगा। फ़िराक-साहबको ग़ैरजिम्मेदार आदमियोंसे जो अपनी ज़िन्दगीको दानिस्ता (जान-बूझकर) तबाह करनेपर तुले हो, सख्त चिढ़ है। ऐसे आदमियोंको वे ज़्यादा देर बर्दाश्त नही कर पाते। वे उन्हे 'उखड़े हुए लोग' कहा करते है। वे ऐसे ही लोगोंके बारेमें गुफ्तगू कर रहे थे कि यक-ब-यक अपने बारेमें कहने लगे—"मै और 'जोश' भी अपनी ज़िन्दगीमें सख्त ग़ैरजिम्मेदार वाकअ् हुए है। मगर फिर भी हमारा दिमाग़ तवाज़ुनके एहसास (सन्तुलनकी अनुभूति) से कभी खाली नहीं रहता। हमारे खेमोकी तनावे ढीली जरूर पड जाती हैं, मगर खूँटे कस कर गड़े रहते है। 'अशरफ़अली' कभी-कभी सरूरके आलममें कहते—"फ़िराककी शख्सियत बड़ी Abnormal (नियमविरुद्ध, असामान्य) है।" जब वे यह कहते तो मुझे महामहोपाध्याय गंगानाथ झा की बात याद आ जाती—"फ़िराक़ अगर युँ ही रहा तो एक दिन पागल हो जायगा।" अशरफ़-अली और गंगानाथने मुख्तलिफ़ पैराये (भिन्न-भिन्न ढंग) में क़रीब-क़रीब

एक ही बात कही है। मगर फ़िराक़ साहबकी शख्सियत (व्यक्तित्व) को इसी तवाज़ुन (सन्तुलन शक्ति) ने बचा लिया। जिसकी तरफ़ उन्होंने मजाज़पर गुफ्तगू करते हुए इशारा किया था। फ़िराक़ साहब खुदसे कभी ग़ाफ़िल नहीं हो पाते। ऐन बेखबरीके आलममें भी वे खबरदार रहते है। अपने नेको-बदको खूब समझते है। इसलिए वे दरहक़ीक़त इतने Abnormal है नहीं, जितने नज़र आते है। मै अशरफ़अलीकी इस बातसे इख्तिलाफ़ करता तो वह खुलकर अपनी बातकी तशरीह (खुलासा) करने लगते—

"मियाँ तुम्हारी समझमें 'फ़िराक़' नहीं आयेगा, और न तुम उसकी ग़ज़ल समझ सकोगे।"

"क्यो ?"

"इसलिए कि उसकी ग़जल उसकी शख्सियत (व्यक्तित्वका प्रतिबिम्ब) है। बड़ा कर्ब और दर्द (बेचैनी-टीस) है उस शख्सियतमें।

यह दोजख और जन्नत (नरक-स्वर्ग) दोनोसे मिलकर बनी है। इसमें शदीद बाहमीयत (तीव्र परस्पर मिलन) पाई जाती है। मगर इसीके साथ इन्सानियतसे भी यह बडी मुहब्बत करती है। एक तरफ़ अपने पूरे घरबारसे मुतनफ्फ़िर (नाराज़) है, दूसरी तरफ़ यह सबको चाहती है। यह शख्स एक तरफ़ तो पैसेको दाँतसे पकडता है, दूसरी तरफ़ नादार, मगर ज़हीन तुल्बा (ग़रीब किन्तु योग्य विद्यार्थियो) की फ़ीस भी जमा कर आता है और अपना नाम तक ज़ाहिर नहीं करता। उसने ज़हरको तिरयाक़ (विषनाशक दवा) बनाया है और यही उसकी ग़ज़लकी रूह है।"[1]......

१. नक़ूश जनवरी १९५६ पृ० ४६९–७०।

शामे-अयादत

यह नज़्म 'फ़िराक़' साहबने अगस्त १९४३ ई० में इलाहाबादके सिविल अस्पतालमें रुग्ण शैय्यापर लेटे-लेटे कही थी। उन दिनों सिविल अस्पतालमें बड़े अफ़सरोंका ही प्रवेश हो सकता था। होशमें आनेके बाद चिन्ताजनक और भयावह स्थितिमें होते हुए भी आप यह नज़्म कहनेसे बाज न आये। नज़्म सुनानेसे पूर्व अपने इष्ट-मित्रोंसे फ़र्माया—"साहब! कितनी मनहूस फ़जा है इस अस्पतालकी? हर शख्स मुहज़्ज़िब (सभ्य) बना बिस्तरपर लेटा रहता है। यह साहब लोगोंका अस्पताल है ना? मगर जबसे मैं आया हूँ, जान पड गई है इस अस्पतालमें। अब मालूम हुआ है यहाँके स्टाफ़को—कोई आदमी आया है अस्पतालमें"! और वाक़ई अस्पतालमें जान पड़ गई थी। खामोश और पुर सुकून अस्पताल एक मुशाअरेके पण्डालमें तब्दील हो गया था। साहब लोगोको सख्त परेशानी दामनगीर थी।[1]

फ़िराक़ साहबकी प्रेयसी, जिससे साल-छः माह पूर्व ही प्रेम हुआ था। अस्पतालमें उन्हे देखने आई तो फ़िराक साहबके हृदयमें जो भावोद्रेक उठे वे उन्होने इस नज़्ममें समाये हैं। ८० शेर तो अस्पतालमें ही कहे, फिर वहाँसे आकर 'शामे अयादतके महबूबसे' सन् १९४४ ई० में ८० पृष्ठकी लम्बी नज़्म कही। यह दोनो अश आपकी नज़्मोंके संकलन 'रूहे-काएनात' में ९७ पृष्ठमें समाप्त हुए है। कहीं-कहींसे चन्द शेर बतौर नमूना पेश है। प्रारम्भमें प्रेयसीके रूपकी छटा देखिए—

आमदे-महबूब

यह कौन मुसकराहटोंका कारवाँ[2] लिये हुए
शबाबो - शेरो - रंगो - नूरका[3] धुआँ लिये हुए

---

१. नक़ूश शख्सियात नं० जनवरी १९५६ पृ० ४६४।
२. यात्री-दल, ३. यौवन और कवित्वके प्रकाशका।

धुआँके बर्क़े-हुस्नका लहकता शोला[1] है कोई
चुटीली ज़िन्दगीकी शादमानियाँ[2] लिये हुए
लबोंसे[3] पंखड़ी गुलाबकी हयात[4] माँगे हैं
कँवल-सी आँख सौ निगाहे-मेहबाँ लिये हुए
क़दम-क़दम पै दे उठी है लौ ज़मीने-रह-गुज़र[5]
अदा-अदामें बे-शुमार बिजलियाँ लिये हुए
निकलते - बैठते दिनोंकी आहटें निगाहमें
रसीले होंट फ़स्ले - गुलकी दास्ताँ लिये हुए
वह मुसकराती आँखें जिनमें रक़्स[6] करती है बहार
शफ़क़की[7], गुलकी, बिजलियोंकी, शोख़ियाँ लिये हुए
वह नरगिसे-सियाह, नीम-बाज़ मैकदा-बदोश[8]
अँधेरी मस्त रातोंकी जवानियाँ लिये हुए
यह कौन नौ बहारे-नाज़ आया उज़्व-उज़्वमें[9]
जवानियाँ जवानियोंकी आँधियाँ लिये हुए
यह कौन आँख पड़ रही है मुझपर इतने प्यारसे
वह भूली-सी, वह याद-सी कहानियाँ लिये हुए
यह किसकी महकी-महकी साँसें ताज़ा कर गईं दिमाग़
शबोंसे राज़[10], शबनमोंकी नर्मियाँ[11] लिये हुए
यह किन निगाहोंने मेरे गलेमें बाहें डाल दीं
जहान भरके दुःखसे, दर्दसे अमाँ[12] लिये हुए

---

१. जवानीरूपी बिजलीका ज्वलन्त अंगारा, २. ख़ुशियाँ, ३. होटोंसे, ४. ज़िन्दगी, ५. मार्गकी ज़मीन, ६. नृत्य, थिरकती, ७. उषाकी, ८. शराबी नरगिसी आँखें, ९. अंग-अंगमें नवीन बहारकी तरह, १०. रात्रिके भेद, ११. ओसकी कोमलता, १२. छुटकारा।

निगाहे - यार दे गई मुझे सकूने - बे - कराँ[1]
वह बे कही वफ़ाओंकी गवाहियाँ लिये हुए
'फ़िराक़' आज पिछली रात क्यों न मर रहूँ कि अब
हयात[2] ऐसी शामें, होगी फिर कहाँ लिये हुए

फ़िराक़ साहब आशिक़ाना और इन्क़िलाबी दोनो किस्मके शाइर हैं। उनके यहाँ एक ही नज़्ममें जहाँ इश्क़ लहरें मारता हुआ नज़र आता है, वहाँ इन्क़िलाब आग उगलता हुआ भी दिखाई देता है। प्रेयसीकी अभी रूप छटाको जी भर देख भी न पाये थे कि उनके हृदयमें इस तरहके भाव प्रस्फुटित होने लगे—

नई दुनिया

मगर नहीं कुछ और मस्लहत[3] थी उसके आनेमें
जमालो-दीदे-यार[4] थे नया जहाँ लिये हुए
इसी नये जहाँमें आदमी बनेंगे आदमी
जबींपे शाहकारे-दहरका निशाँ[5] लिये हुए
इसी नये जहाँमें आदमी बनेंगे देवता
तहारतोंका फ़र्क़े-पाक[6] पर निशाँ लिये हुए
ख़ुदाई आदमीकी होगी इस नये जहानपर
सितारोंके हैं दिल यह पेश-गोइयाँ लिये हुए
सुलगते दिल शरर-फ़िशाँ - ओ-शोला-बार बर्क़-पाश
गुज़रते दिन हयाते-नौकी सुर्ख़ियाँ लिये हुए,

१. बेचैनोमें चैन, २. जीवनमें फिर यह शाम कहाँ आयेगी ? ३. उद्देश्य, वजह, ४. प्रेयसीका दर्शन, रूप, ५. युगके नेतृत्वका मस्तकपर चिह्न, ६. मस्तकपर पवित्रताका चिह्न।

इसी तरहके विचारोंमें निमग्न फ़िराक़ साहबको अकस्मात् ख्याल आता है कि वे तो अस्पतालमें रोगियोंके साथ लेटे हुए है--

यादगारे-शाम

नये ज़मानेमें अगर उदास ख़ुदको पाऊँगा
यह शाम याद करके अपने ग़मको भूल जाऊँगा

अयादते-हबीबसे[1] वह आज ज़िन्दगी मिली
खुशी भी चौंक-चौंक उठी, गमकी आँख खुल गई

अगर्चे डाक्टरने मुझे मौतसे बचा लिया
पर उसके बाद तेरी आँखने मुझे जिला लिया

निगाहे-यार तुझसे अपनी मंज़िलें मै पाऊँगा
तुझे जो भूल जाऊँगा तो राह भूल जाऊँगा

अस्पतालमें अपनी वेदनासे छटपटाते हुए फ़िराक़ साहबको स्मरण होता है कि यह तेरा दुःख तेरे अकेलेका नही है। यह समस्त विश्व ही वेदनासे कराह रहा है—

दर्से-हयात

क़रीब तर मै हो चला हूँ दुःखकी काएनातसे[2]
मैं अजनबी नहीं रहा हयातसे[3] ममातसे[4]

वह दुख सहे कि मुझपै खुल गया है दर्दे-काएनात[5]
है अपने आँसुओंसे मुझपै आइनए-ग़मे-हात[6]

---

१. प्रेयसीके आनेसे, २. दुःखकी दुनियासे, ३. ज़िन्दगीसे, ४. मौतसे, ५. विश्ववेदना, ६. ज़िन्दगीके दुःखोंका दर्पण ।

यह बे क़सूर जानदार दर्द-झेलते हुए
यह ख़ाको-ख़ूँके पुतले अपनी जाँ पै खेलते हुए

वह ज़ीस्तकी[1] कराह जिससे बेक़रार है फ़ज़ाँ[2]
वह ज़िन्दगीकी आह जिससे काँप उठती है फ़ज़ाँ

कफ़न है आँसुओंका दुखकी मारी काएनात पर
हयात क्या उन्हें हक़ीक़तोंसे होना बे ख़बर

जो आँख जागती रही है आदमीकी मौतपर
वह अब्रे-रंग-रंगको भी देखती है सादा-तर

ग़मे-हयात

अभी मशीयतोंपै[3] फ़तह पा नहीं सका बशर
अभी मुक़द्दरोंको बसमें ला नहीं सका बशर

अभी तो इस दुखी जहाँमें मौत ही का दौर है
अभी तो जिसको ज़िन्दगी कहें वह चीज़ और है

अभी तो ख़ून थूकती है ज़िन्दगी बहारमें
अभी तो रोनेकी सदा है नग़मए-सितारमें[4]

१. ज़िन्दगीका, २. वातावरण, ३. इच्छाओंपर, ४. सितारके स्वरोंमें।

अभी तो सीनए-बशरमें सोते हैं वह ज़लज़ले
कि जिनके जागते ही मौतका भी दिल दहल उठे

इन्ही विचारोंमें डूबे हुए फ़िराक़ साहबके सामने जब प्रेयसी आती है, तब फिर लहककर कहने लगते है—

शामे-अयादतके महबूबसे

हर अदा गोया पयामे-ज़िन्दगी[1] देती हुई
सुबहें तेरे हुस्नमें अँगड़ाइयाँ लेती हुई

जिस्मकी ऐसी सजावट रंगका ऐसा निखार
सर-बसर साँचेमें गोया ढल गई रूहे-बहार

आँख जीता-जागता जादू, तबस्सुम मौजे-बर्क़[2]
सरसे एड़ी तक जवानी आप अपने रसमें ग़र्क़

करवटें लेती हैं रातें गेसुओंकी छाँवमें
दिन फिरें दुनियाके वोह अन्दाज़ उठते पाँवमें

यह सिजल[3] गरदन यह साँचे में ढले शाने[4]-सुडौल
जिस्मके ख़त जैसे लौ दे-दे उठें शाइरके क़ौल

जैसे शमशीरें खिचें जुट्टी भवोंका वह तनाव
रागिनी जैसे खड़ी हो जिस्मका ऐसा रचाव

१. जीवन-सन्देश, २. मुसकान ऐसी जैसे बिजलीकी लहर ३. सुन्दर, नफ़ीस, ४. कन्धे।

चाल वह जिससे लहक उठता हो इश्क़े-ना मुराद
जिस तरह गुजरे नज़रके सामनेसे कोई याद

पेंग लेती है हक़ीक़त जिस्मकी हर लहरमें
बिजलियाँ रह-रहके कौंदें जैसे बहती नहरमें

करवटोंमें रंगो-बूकी मुसकराती है हयात
देखकर आईना जैसे जाग उट्ठे काएनात

हुस्न है या शबनमिस्ताँ में दहक उट्ठी है आग
तू बहारे-ज़िन्दगानी, तू जवानीका सुहाग

छागलें बजती हैं यूँ लेता है लहरें अंग-अंग
मस्त लै में छेड़ दे जिस तरह कोई जल-तरंग,

कुछ दिनों फ़ितरतके गहवारोंने जब पाला तुझे
रंगो-बूने हुस्नके साँचेमें जब ढाला तुझे

आगई बादे - बहारीकी लचक रफ़्तारमें
मौजे - दरियाका तरन्नुम बस गया रुख़सारमें

धरतीकी करवट

–१८७ में से १२ बन्द–

सूरज-चाँद अँगड़ाई लेंगे
तारे अपनी गति बदलेंगे
परवत-सागर लहरायेंगे
जब यह धरती करवट लेगी

सबकी क़िस्मत चमक जायगी
कारीगर, मज़दूर, किसान
भारतके बेचैन जवान
दबे-दबे बेनामो-निशान

खेती करनेवालोंका राज
माल बनानेवालोंका राज
धन उपजानेवालोंका राज
हुन बरसानेवालोंका राज

इस ऊसर बंजर धरतीको
इस जलती तपती धरतीको
स्वर्ग बनानेवालोंका राज

नये नियमसे, नये रूपसे
नये रंगसे, नये ढंगसे
खेती होगी

खेत और खलिहानका रोना
बीज, खाद, पानीका रोना
गायकी हाय, बैलका रोना
घास, खली, भूसेका रोना

ज़मींदारकी मारका रोना
गाली और फटकारका रोना
धर पकड़ और बेगारका रोना
क़र्ज़ और ब्याजका रोना

नहीं रहेगा, नहीं रहेगा
दिन बदलेगा, पाप कटेगा
साथी सब सन्ताप कटेगा
अन खलिहानसे घरमें आये

दूध, दही, घी, नाज और फल
गाँवमें जो दौलत उपजेगी,
वह सबकी सब अपनी होगी,
अब यह दुर्व्यवहार मिटेगा

जात-पाँतका भेद मिटेगा
ऊँच-नीचका भेद मिटेगा
हिन्दू-मुस्लिम भेद मिटेगा
ब्राह्मण-शूद्र बराबर होंगे

धरतीका तख्ता उलटेंगे
दुनियामें सर्वोदय होगा
नया समाज आँखें खोलेगा
नई सभ्यता क़ायम होगी

सूबा-सूबा जाग उठेगा
दरिया-दरिया जाग उठेगा
सहरा-सहरा जाग उठेगा
जीवन-सपना जाग उठेगा

रोटियाँ

–८५ में से ४ बन्द–

चीन और रूसने क्या किया और हम क्या कर रहे हैं, इस अन्तरको इस कवितामें दर्शाया गया है। किन्हींके लिए रोटियोंका कुछ मूल्य न हो, लेकिन करोड़ो श्रमजीवियोंको रोटियाँ मिलना कितना आवश्यक है, यही बतानेका फ़िराक साहबने प्रयास किया है—

यह माना कि रोटी ही सब कुछ नहीं है[1]
यही चीन और रूस है बात कलकी
थे वोह देस शरमाते जिनसे नरक भी
न लज़्ज़त न दौलत, न कपड़ा न रोटी
न इल्म और हिकमत, दिया था न बत्ती

१. हर चौथी पंक्तिके बाद यह पंक्ति अंकित है। स्थानाभावके कारण हर बन्दके साथ नहीं दी जा रही है।

यहाँ ज़िन्दगी मौतसे भी थी बदतर
बनाया था नाकामियोंने यहाँ घर
यहाँ हर मरज़ने जमाया था बिस्तर
हुआ जाता था हाल अबतर-से-अबतर

यह थी भिक्षुकों, पादरियोंकी दुनिया
यह थी बेबसों, भूखे-नंगोंकी दुनिया
नशे बाज़ों अफ़्यूनचीयोंकी दुनिया
जहालत-फलाकतके मारोंकी दुनिया

तू इन इन्क़िलाबोंका मतलब भी समझा
जिन्होंने वहाँकी पलट दी है काया
जिन्होंने वहाँ रुख़ ज़मानेका बदला
पलक मारते पाप जनमोंका काटा

मिले चन्द ही को तो लानत है रोटी
जो मँहगी मिले तो मुसीबत है रोटी
न सबको मिले तो ज़लालत है रोटी
जो सबको मिले ऐन रहमत है रोटी

जहाँ भाईके मुँहसे रोटी न छीने
जहाँ मिलके पैदा करें, मिलके खायें
जहाँ रोटियाँ प्रेम ही का सबक़ दें
जहाँ रोटियाँ जगमगाती हैं रूहें

देखते रहो

–१२ में-से ३ बन्द–

आते हैं रौंदते हुए हर तख़्तो-ताजको
औरंगो-शाने-कजकुलाहा[1] देखते रहो
जन्नत उतार लायेगा रूए-ज़मीनपर[2]
इनसानियतका अज़्मे-जवाँ[3] देखते रहो

जो मौत बेचते हैं ज़मानेके हाथ आज
फुँकनेको है कल उनकी दुकाँ देखते रहो
दुनियाको हम करेंगे हसींसे हसीन-तर
तुम जलवा हाए-लाला-रुख़ाँ[4] देखते रहो

हम गर्मिए-अमलसे बदल देंगे काएनात
तुम सोज़ो-साज़े-क़ल्बे-तपाँ देखते रहो
ग़मके पहाड़ काटे जो कटते नहीं 'फ़िराक़' !
उड़ जायेंगे वह बनके धुआँ देखते रहो

---

१. बादशाहोंकी इज़्ज़तों और सिंहासनोंको, २. पृथ्वीपर, ३. दृढ़ इरादा, ४. सुन्दरियोंको ।

जागते रहो

१९-में-से ७ बन्द-

है रात पुर-ज़े-ख़ौफ़ो-ख़तर[1] जागते रहो
झपके न एक पल भी नज़र जागते रहो
सहराए-बे-अमाँमें[2] हुई कारवाँको[3] शाम
लुटनेका डर है अहले-सफ़र जागते रहो

डस ले कहीं न दौरे-कुहनकी[4] अँधेरी रात
होनेको है तुलूए-सहर[5] जागते रहो
चूके जो चाल उनके निशाँ तक नहीं मिले
ख़ुद राहज़न[6] है, राह-गुज़र[7] जागते रहो

उन वादियोंसे[8] अब है गुज़रना तुम्हें जहाँ
जिब्रीलके[9] भी जलते हैं पर, जागते रहो
ऐसेमें मनकी जोत जगालो मुसाफ़िरो !
जिससे ख़िजिल[10] हो नूरे-सहर[11] जागते रहो

---

१. ख़ौफ़-ख़तरोंसे भरी हुई, २. जहाँ शरण लेनेको स्थान नहीं, ३. यात्री दलको, ४. पुराने युगकी, ५. सूर्योदय, ६. लुटेरे, ७. मार्ग, ८. घाटियोंसे, ९. एक फ़रिश्तेका नाम, १०. लज्जित, ११. प्रभात।

यारो ! फ़रेबे-मज़हब-ओ-माज़ीसे[1] होशियार
दोनों हैं एक शोब्दागर[2] जागते रहो
मानो बहुत मुहीब[3] है तारों भरी यह रात
यह भी है एक रक़्से-शरर[4] जागते रहो

तक़दीरे - काएनात[5] तुम्हारी निगाह है
सोजाएँ गो क़ज़ा-ओ-क़दर[6] जागते रहो
जो आ रहा है हिन्दमें उस इन्क़िलाबकी
कब है मशीयतोंको[7] ख़बर जागते रहो

इस अह्दमें है लरज़ा-बर-अन्दाम[8] काएनात[9]
तारे बदल रहे हैं डगर जागते रहो
दुश्मन है अपनी घातमें दिन-रात होशियार
रन बोलता है आठ पहर जागते रहो

आकाश भी पसीनेमें भीगा हुआ-सा है
है चाँदकी जबीन[10] भी तर जागते रहो
सैय्याद बढ़ रहे हैं सुए-सहने-गुलसिता[11]
सब फूँक देंगे बर्गो - समर[12] जागते रहो

---

१. मज़हबों और भूत कालीनकी झूठी कहानियोंके धोकेसे, २. जादूगर, ३. भयानक, ४. अंगारोंका नाच, ५. विश्वका भाग्य, ६. ईश्वरके आदेश, ७. ईश्वरकी इच्छाओंको, ८. काँपती हुई, ९. दुनिया, १०. मस्तक, ११. उद्यानकी तरफ़, १२. पत्तो-फलोंको ।

चन्द शेर

अब आपकी ग़ज़लोंसे चुनकर शेर दिये जा रहे हैं—

तेरे छूने-से भी दुःखे जो।
कौन उस दिलकी फाँस निकाले ॥

हयात[1] हो कि अजल[2], सबसे काम ले ग़ाफ़िल !
कि मुख़्तसर[3] भी है कारे-जहाँ-दराज़[4] भी हैं ॥

बसा-औक़ात दिलके साथ बारे-ग़म उठानेमें।
सुना है हुस्न भी अपनी नज़ाकत भूल जाता है ॥

कुछ गिराँ[5] हो चला है बारे-निशात[6]।
आज दुखते हैं हुस्नके शाने[7] ॥

तेरी याद करता हूँ और सोचता हूँ।
मुहब्बत है शायद तुझे भूल जाना ॥

इसी दिलकी क़िस्मतमें तनहाईयाँ[8] थीं।
कभी जिसने अपना पराया न जाना ॥

इश्क़में सब्रो-क़रार भी आये।
तुम भी जो आ जाते अच्छा था ॥

---

१. ज़िन्दगी, २. मौत, ३. संक्षिप्त, ४. लम्बी, ५. भारी, ६. सुखोंका बोझ, ७. कन्धे, ८. अकेलापन ।

निगाहे-यार कबतक ? यह फ़रेबे-हिम्मत-अफ़ज़ाई[1] ।
यहींसे इश्क़ मुश्किल था, यहींसे इश्क़ आसाँ है ॥

जहाँमें थी फ़क़त अफ़वाह, तेरे जल्वोंकी ।
चिराग़े-दैरो-हरमे[2] झिलमिलाये हैं क्या-क्या ॥

यह समझकर रहगुज़ारे-जुस्तुजूमें[3] रख क़दम ।
उसका पाना सहल, उसका ढूँढ़ना दुश्वार है ॥
फ़र्क़ नाज़ुक है उसे क्योंकर बयाँ कीजे 'फ़िराक़' !
सुबह करना सहल, शबका[4] काटना दुश्वार है ॥

इससे ज़ियादा और क्या अब कोई नामुराद हो ।
आज नज़रसे गिर चलीं इश्क़की काम-रानियाँ[5] ॥

अभी फ़ितरतसे[6] होना है नुमायाँ[7] शाने-इन्सानी ।
अभी हर चीज़में महसूस होती है कमी अपनी ॥

आह उन मस्त निगाहोंके इशारे भी 'फ़िराक़' !
हम समझनेको बहुत समझे मगर क्या समझे ?

जब देखो उसको, है यह आलम ।
इक अँगड़ाई आई हुई-सी ॥

---

१. हिम्मत बढ़ानेका फरेब, २. मन्दिर-मस्जिदके दीपक, ३. तलाशके मार्गमें, ४. रात्रिका, ५. सफलताएँ, ६ प्रकृतिसे, ७. प्रकट ।

हिज्रमें पिछले पहरका आलम ।
तारोंको नींद आई हुई-सी ॥

क़ौलो-क़रारे - हुस्न भी ख़्वाबो-ख़याल हो गये ।
जो न कहा था वह मगर इश्क़को भूलता नहीं ॥

देख लिया वहाँ तुझे दीदए-एतबार[1]ने ।
हाथको हाथ भी जहाँ कहते हैं सूझता नहीं ॥

दिल दुःखके रह गया यह अलग बात है, मगर ।
हम भी तेरे ख़यालसे मसरूर[2] हो गये ॥

हमसे क्या हो सका मुहब्बतमें ।
तूने तो ख़ैर बेवफ़ाई की ॥

हज़ारबार-मुहब्बत[3] हो, दिलतो हलका है ।
न सरको और न हम दर्दे-सरको देखते हैं ॥

चलगई क्या जानिए कैसी हवा ?
आज बुझे दिलसे भी उट्ठा धुआँ ॥

होशकी तौफ़ीक़ भी कब अहले दिलको हो सकी ।
इश्क़में अपनेको दीवाना समझ बैठे थे हम ॥

---

१. विश्वासी दृष्टिने, २. प्रसन्न, ३. प्रेम-बोझ ।

बहुत दिनोंमें मुहब्बतको यह हुआ मालूम ।
जो तेरे हिज्रमें गुज़री वोह रात, रात हुई ॥

एक वोह मिलना, एक यह मिलना ।
क्या तू मुझको छोड़ रहा है ?

इस पुरसिशे-करमपै[1] तो आँसू निकल पड़े ।
क्या तू वही ख़ुलूसे-सरापा[2] है आज भी ?

रमूज़े-उज्रे-जफ़ातक[3] ख़याल जा न सका ।
मैं चुप रहा तो बुरा माननेकी बात नहीं ॥

उठनेवाली है वोह निगाहे-करम[4] ।
इश्क़ भी कुछ लगा है शरमाने ॥

तुझे दुनियाको समझनेकी हविस[5] है ऐ काश ।
तुझे दुनियाको बदल देनेका अरमाँ होता ॥

ग़मका भी 'फ़िराक़' अब तो एहसास नहीं होता !
शामे-शबे-फ़ुरक़त है, तनहाई-सी तनहाई ॥

जब तेरी याद न थी, जब तेरा एहसान न था ।
हम तो उसको भी मुहब्बतका ज़माना समझे ॥

---

१. हाल-चाल पूछनेकी जो कृपा की, २. प्रेमसे ओत-प्रोत, ३. अत्याचारोंके विरोध करने तक, ४. कृपा दृष्टि, ५. तृष्णा, इच्छा ।

कहाँ इतनी ख़बर उम्रे-मुहब्बत किस तरह गुज़री ।
तेरा ही दर्द था दिलमें, जहाँ तक याद आता है ॥

तुझको पाकर भी न कम हो सकी बेताबिए-दिल ।
इतना आसान तेरे इश्क़का ग़म था भी कहाँ ?

अभी फ़िक्रे-इलाजे-इश्क़ न कर ।
अभी कुछ दिन यह दर्द सहने दे ॥

आज तो दर्दे-हिज्र भी कम है ।
आज तो कोई आया होता ॥
मैं हूँ, दिल है, तनहाई है ।
तुम भी जो होते अच्छा होता ॥

ख़बर कुछ उनकी भी रखते हो रंगो-बू वालो !
जो काटते चले जाते थे राहे-सेहराको ॥

जो न लिक्खा कातिबे - तक़दीरने ।
हाँ वोह पैग़ामे-ज़बानी फिर सुना ॥

मआ़निये तक़दीर[1] तो वोह था जिसे ।
कातिबे - तक़दीर[2] भी समझा नहीं ॥

ग़मो-अ़लम वही होते, वही तेरे महजूर[3] ।
गुज़रने वाली जो शब थी गुज़र गई होती ॥

---

१. भाग्य-रेख, २. भाग्य-लेखक ३. विरही ।

याद है चश्मे-करमका[1] वोह बदलना याद है।
हुस्न अफ़सुर्दा[2]-सा था और इश्क़को हैरत न थी ॥

मैं पूछता तो हूँ मगर जवाबके लिए नहीं।
यह क्यों तेरी नज़र फिरी, यह क्यों बदल गई हवा ?

एहतियाते-इश्क़की उस वक़्त कोई दाद दे।
जब निगाहे-यार भी रुसवा नज़र आने लगे ॥

निगाहे-कामयाबका भी एतबार उठ गया।
मिलीं तेरे जमालको[3] नज़ाकतें नई-नई ॥

कहीं वही तो गिरेबाँ नहीं है आज अपना।
वोह तेरा गोशए-दामन[4] जो दस्तयाब[5] न था ॥

कोई आया न आयेगा, लेकिन—
क्या करें गर न इन्तिज़ार करें ॥

क्या कीजिए 'फ़िराक़'! अगर किसीपर कोई।
नामेहबाँकी तरह हुआ मेहबाँ कोई ॥

इन्क़िलाब आया तो यूँ आया निगाहे-यारमें।
कुछ मुरव्वतमें इज़ाफ़ा, कुछ मुहब्बतमें कमी ॥

---

१. कृपा-दृष्टिका, २. सुस्त, मुर्झाया, ३. रूपको, ४. दुपट्टेका पल्ला, ५. प्राप्त।

निगाहे-यार बढ़ चली हद्दे-लुत्फ़ो-जौरसे[१] ।
बदलती जा रही हैं बज़्मे-नाज़की रवायतें[२] ।।

हाले-अंजामे-इश्क़[३] क्या कहिए ।
अब तो हम भी लगे हैं पछताने ।।

न उसको रब्त पसन्द, और न इहतिराज़ पसन्द ।
अभी समझते नहीं तुम मिज़ाजे-दुनियाको ।।

वोह कीमिया ही सही पहले ख़ाक होना है ।
अभी तो सोज़े-मुहब्बतकी आँच खाये जा ।।

न और खोल अभी नीम-बाज़[४] आँखोंको ।
तेरे निसार[५] यह जादू अभी जगाये जा ।।

पहले ख़ुदाका छोड़ सहारा ।
दरसे-अमल[६] आसान नहीं है ।।

बिछुड़के तुझसे कहीं देखना न पड़ जाये ।
विसाल ऐसोंका जिनकी जुदाई शाक़[७] नहीं ।।

मुहब्बतमें मेरी तनहाइयोंके हैं कई उनवाँ[८] ।
तेरा आना, तेरा मिलना, तेरा उठना, तेरा जाना ।।

---

१. आनन्द और अत्याचारकी सीमासे, २. प्रेयसीकी महफ़िलके नियम, ३. प्रेम-परिणामका हाल ४. अधखुले नेत्रोंको, ५. क़ुर्बान, न्योछावर, ६. चरित्रका पाठ, अमली ज़िन्दगी, ७. नागवार, ८. शीर्षक ।

विसालको[1] भी बनादे जो ऐन दर्दे-'फ़िराक़' ।
उसीसे छूटनेका दुःख सहा नहीं जाता ।।

—निगार जनवरी १९४१

क्या अजब तेरे चन्द तर दामन ।
सबके दाग़े-गुनाह धोजाएँ ।।
अपने बाद आनेवाली नस्लोंके ।
राहमें ख़ार तो न बोजाएँ ।।
रात आई 'फ़िराक़' दोस्त नहीं ।
किससे कहिए कि आओ सो जाएँ ।।

अफ़सुर्दगीए-इश्क़में[2] सोजे-निहाँ[3] भी हो ।
यानी बुझे दिलोंसे कुछ उठता धुआँ भी हो ।।

इक तेरे छुटनेका ग़म, एक ग़म उनसे मिलनेका ।
जिनकी इनायतोंसे जी और उदास हो गया ।।

तू याद आये तेरे जौरो-जफ़ा लेकिन याद न आयें ।
तसव्वुरमें यह मासूमी बड़ी मुश्किलसे आती है ।।

तेरा विसाल बड़ी चीज़ है मगर ऐ दोस्त !
विसालको मेरी दुनियाए-आर्ज़ू[4] न बना ।।

---

१. मिलनको, २. बुझे प्रेममें, ३. छिपा हुआ दर्द
४. जीवन-उद्देश्य ।

तेरा फ़िराक़ तो उसदिन तेरा फ़िराक़ हुआ।
जब उनको प्यार किया मैने, जिनसे प्यार नहीं ॥

हुस्न इक ख़्वाबे-नाज़ है, जिसके।
चौंक पड़नेको इश्क़ कहते हैं ॥

बजा यह ज़ब्ते-ग़म, लेकिन मुहब्बतमें कभी रोले।
दबानेके लिए हर दर्द ओ नादाँ ! नहीं होता ॥

वह आलम और ही है, जिसमें मीठी नींद आ जाये।
ग़मो-शादीमें सोनेके लिए रातें नहीं होतीं ॥

फिर यह कैसी कसक-सी है दिलमें ?
तुझको मुद्दत हुई कि भूल चुका ॥

आज आँखोंमें काटले शबे-हिज्र[1]।
ज़िन्दगानी पड़ी है सो लेना ॥

आज तो दर्दे-हिज्र भी कम है।
आज तो कोई आ गया होता ॥

इश्क़ दुनियासे बेख़बर है मगर—
पेटकी बात जान लेता है ॥

वफ़ा-जफ़ामें तेरी इम्तियाज़[2] सहल न था।
समझ-समझके मुहब्बत भी आज रोई है ॥

---

१. विरह-रात्रि, २. अन्तर समझना।

ऐ सोज़े-इश्क़[1] ! ख़ूबिए-क़िस्मतको क्या करूँ ?
जलनेका ग़म किसे है ? मगर दिल ग़लत जला

बात हो लेन-देनकी जिसमें
वह तो बनियोंका इश्क़ है प्यारे

तुर्फ़ा बहाना[2] तर्के-तअल्लुक़का[3] यह निकला और सुनो
कहते हैं वोह—"आप यक़ीनन मुझसे बेहतर इन्साँ हैं

बहुत दिनोंमें मुहब्बतको हो सका मालूम
यही कि तुझको ज़रूरत नहीं मुहब्बतकी

ख़ुदा करे न ज़रूरत पड़े तुझ ऐसेकी
जिसे ख़ुद अपनी ज़रूरतका हो न कुछ एहसास

—मशअ़लसे

एक चर्का-सा वक़्तका खाकर
बाँकपन आगया जवानोंमें

वह आग मुहब्बतकी लगते भी नहीं देखी
रग-रगमें जो रह-रहकर शोले-से[4] उठाये है

पहले-से भी गहरा है रंग उसके तग़ाफ़ुलका[5]
लेकिन दिले-दीवाना कब होशमें आये है

---

१. दग्ध प्रेम, २. एक नया बहाना, ३. सम्बन्ध-विच्छेदका, ४. अंगारे-से, ५ उपेक्षाका ।

जिस राहमें ऐ वाइज़ ! सूरज है इक-इक ज़र्रा[१]
सुनते हैं वही रस्ता मैख़ानेको जाये है

तेरी जफ़ाएँ भुलाईं, तेरी वफ़ाएँ भी
जो याद आये तो ऐ दोस्त ! तू ही याद आये

मस्तियाँ हर शराबख़ानेकी
तेरी अँगड़ाइयोंमें खिंच आईं
तूले-अफ़सानए-हयात[२] न पूछ
मौतको भी जम्हाइयाँ आईं
रोक-रोक उस नवाए-रंजीको[३]
दबी चोटें 'फ़िराक़' उभर आईं

शादमानी[४] करे न शाद मुझे
अपने ग़मपर है एतमाद[५] मुझे
जैसे छुप जाये कौंदकर बिजली
आई तेरी वफ़ाकी याद मुझे
जाने क्या ध्यान आगया है आज
तुम न ऐसेमें आओ याद मुझे

—आजकल जून १९५० ई०

ख़ुदको पहचान सकी दुःख भरी दुनिया न अभी
ग़मे-इन्साँको न आया ग़मे-इन्साँ होना

---

१. कण, २. जीवन-कहानीका विस्तार, ३. दुःखपूर्ण संगीतको, ४. प्रसन्नता, ५. भरोसा ।

बुझ-बुझके दाग़े-दिल उभर आते हैं हमनवा[१] !
मुझ क़ैदिए-क़फ़सकी[२] ख़िज़ाँ क्या बहार क्या

दूरि-ए-यारका भी ग़म, ऐसोंके मिलनेका भी ग़म
जिनको क़रीब पाके दिल और उदास हो गया

दिल दुःखे रोये हैं शायद, इस जगह ऐ दोस्त ! आज
ख़ाकका इतना चमक जाना ज़रा दुश्वार था

इक जलवए-हक़-नुमाको देखा
तुमको देखा, ख़ुदाको देखा

तुम्हें पाकर भी क्यों रहती शिकायत कस-म-पुर्सीकी[३]
मेरे तुम हो गये मुझको भी गर अपना बना लेते

न कोई वादा न कोई यक़ीं न कोई उम्मीद
मगर हमें तो तेरा इन्तिज़ार करना था

हज़ार आँख चुराओ यह कोई तौर नहीं
तुम्हारे सामने यह मैं हूँ कोई और नहीं

एक आलमपै[४] बार[५] हैं हमलोग
किसके दिलका ग़ुबार[६] हैं हमलोग ?
हमने तोड़ी हर-एक क़ैदे-हयात[७]
कितने बे-इख़्तियार हैं हमलोग ?

---

१. साथी-संगी, २. क़ैदीकी, ३. सहानुभूति प्रकट न करनेकी, ४. संसारपै, ५. बोझ, ६. धूल, ७. जीवनका बन्धन ।

क्या कहें आये थे किस उम्मीदसे किस दिलसे हम
इक जनाजा[1] बनके उठते हैं तेरी महफ़िलसे हम
कट गई ऐ बहरे-ग़म[2] ! मौजोंसे हँसते खेलते
बहते-बहते देख आख़िर आ लगे साहिलसे[3] हम

फ़राज़े - तूरे - सीना[4], बुत-कदे, काबेके दर्वाज़े
अभी राहे - मुहब्बतमें, दरो - दीवार हाइल[5] हैं

तू याद भी करके मुझे दिलसे मेरा न हुआ, मेरा न हुआ
मै तुझको भुलाकर भी लेकिन तेरा ही रहा, तेरा ही रहा

जो छुपके तारोंकी आँखोंसे पाँव धरते हैं
उन्हींसे सुनते हैं, अफ़लाक[6] चाल हारे हैं
यही अदाए-हया जान है मुहब्बतकी
जो नीची नज़रोंसे कहते हैं—"हम तुम्हारे हैं"

हमारा हाल सुननेवाले ! तेरे ज़ब्तके सदक़े[7]
यह रह-रहकर तेरा हम मुसकरा देना समझते हैं

तेरे आनेकी क्या उम्मीद ? मगर—
कैसे कह दें कि इन्तिज़ार नहीं

तुम मुख़ातिब[8] हो, सामने भी हो
तुमको देखूँ कि तुमसे बात करूँ ?

---

१. अर्थी, २. दुःखरूपी समुद्र, ३. किनारेसे, ४. तूर नामक पहाड़, ५. विघ्न डालनेवाले, ६.आस्मान,७. सब्रपर न्योछावर, ८. बात करते हुए।

जीनेवालो ! कोई जीनेमें है यह भी जीना
कुछ भी कर-धर न सकें, मिट न सकें, मर न सकें !
जीते मुर्दोंसे जिया भी नहीं जाता है 'फ़िराक़' !
मौत भी इनको अगर आये तो यह मर न सकें

जिस क़ैदसे छुटते भी न बने, वह क़ैदे-मुहब्बत भी देखी
जीनेकी मुसीबत भी देखी, मरनेकी नदामत[1] भी देखी

न हो एहसास[2] तो सारा जहाँ है बेहिसो-मुर्दा[3]
गुदाज़े-दिल[4] हो तो दुःखती रगें मिलती हैं पत्थरमें

शऊरे-इश्क़की तकमील[5] हो चुकी शायद
न भूलता है कोई अब न याद आता है

जब-जब इसे सोचा है, दिल थाम लिया मैंने
इन्सानके हातोंसे इन्सानपै जो गुज़री

काफ़िले या मिट गये या बढ़ गये
अब ग़ुबारे-राह[6] भी उठता नहीं
मौतने भी जानना चाहा, मगर—
ज़िन्दगानीका भरम खुलता नहीं

गिरती दुनिया ले जो सँभाल
है कोई माईका लाल ?

---

१. शर्म, २. अनुभूति, चेतना, ३. संज्ञारहित और निर्जीव, ४. दर्दवाला दिल, ५. प्रेमकी अनुभूति पूर्णता प्राप्त कर चुकी, ६. रास्तेकी धूल ।

मज़हबवाले, दौलतवाले
दोनों बड़े गुरू-घण्टाल

चमने - दौलतो - हुकूमतकी
ख़ूने-मुफ़लिससे[1] आबयारी है[2]

रुपया राज करे, आदमी बन जाय ग़ुलाम
ऐसी तहज़ीब[3] तो तहज़ीबकी रुसवाई[4] है

न पूछ तेरी मुहब्बतमें हात क्या आया ?
न चाहिए मुझे अब कुछ भी और, भर पाया
ख़याले - गेसुए - जानाँकी वुसअतें[5] मत पूछ
कि जैसे फैलता जाता हो शामका साया
तेरी निगाह हुई जब तो ज़िन्दगी पाई
कि आजतक तो मुझे मौतने भी तरसाया
निगाहे-शौक़ने कुछ, अंजुमनने[6] कुछ समझा
कोई न देख सका, इस तरह वह शरमाया

कई बिजलियाँ बे गिरे गिर पड़ी हैं
उन आँखोंको अब आ गया मुसकराना

रात-की-रात कभी मेरा घर
तेरा रैन - बसेरा होता
आज तो दर्दे-हिज्र भी कम है
आज तो कोई आया होता

---

१ निर्धनोंके रक्तसे, २. सिंचाई, ३. सभ्यता, ४. बदनामी, ५. प्रेयसीकी ज़ुल्फ़ोंकी लम्बाई, ६. महफ़िलने ।

कभी पाबन्दियोंसे छुटके भी दिल घुटने लगता है
दरो-दीवार हों जिसमें वही ज़िन्दाँ[1] नहीं होता
बजा है ज़ब्त भी लेकिन, मुहब्बतमें कभी रोले
दबानेके लिए हर दर्द ओ नादाँ नहीं होता

इक उम्र कट गई है तेरे इन्तिज़ार में
ऐसे भी हैं कि कट न सकी जिनसे एक रात
हम अहले-ग़मने रंगे-ज़माना बदल दिया
कोशिश तो की सभीने मगर बन पड़ेकी बात

सुख ही सुख हो जहाँ दिन-रात
उस जन्नतसे ढूँढ़ निजात
प्रेमकी दुनिया क्या दुनिया है
इस नगरीमें दिन है न रात

हिज्रमें पहली निगाहका ज़िक्र
कब याद आई, कब-कबकी बात
क़ातिल उसको कौन कहे
हँसमुख आँखें कोमल गात

दिलोंको तेरे तबस्सुमकी[2] याद यूँ आई
कि जगमगा उठें जिस तरह मन्दिरोंमें चिराग़

प्रेम-कामिनी रसकी पुतली
भीतर ठण्डक बाहर आग

---

१. क़ैद-ख़ाना, २. मुसकानकी।

तुम नहीं आये और रात रह गई राह देखती
तारोंकी महफ़िलें आज आँखें बिछाके रह गईं

हज़ार शुक्र कि मायूस कर दिया तूने
यह और बात कि तुझसे भी कुछ उमीदें थीं
ख़ुदाके सामने, मेरे क़ुसूरवार हैं जो
उन्हींसे आँखें बराबर मेरी नहीं होतीं

मौतका भी इलाज हो शायद
ज़िन्दगीका कोई इलाज नहीं
तुझसे छुटकर बड़ी फ़राग़त[1] है
अब मुझे कोई काम-काज नहीं
इस तरह जिस्मे-नाज़नींको न देख
अपनी आँखोंकी तुझको लाज नहीं ?

उड़ गईं आज उससे भी चिंगारियाँ
मुद्दतों जिस दिलमें घुटता था धुआँ

हाय, वोह राज़े-मुहब्बत जो छुपाए न बने।
हाय, वोह दाग़े-मुहब्बत जो उभरता ही नहीं

इन्हीं तिनकोंमें देख ऐ बुलबुल !
बिजलियाँ भी हैं आशियानोंमें

---

१. फ़ुर्सत।

न पूछ है मेरी मजबूरियोंमें क्या कस-बल ?
मशीयतोंकी[१] कलाई मरोड़ सकता हूँ
उबल पड़ें अभी आबे-हयातके चश्मे[२]
शरारो-संगको[३] ऐसा निचोड़ सकता हूँ

अभी बहुत ठोकरें हैं खाना, अभी बहुत चाल चूकना है।
अभी बहुत गुल हैं खिलनेवाले, अभी बहुत ख़ून थूकना है।

मौजे-सबाकी पूछ न सफ़्फ़ाक दस्तियाँ,
डूबी हुई हैं ख़ूनमें फूलोंकी बस्तियाँ

यह डर रहा हूँ कि ऐसेमें वह न याद आ जाएँ
यह काली-काली घटाएँ यह ऊदी-ऊदी हवाएँ

नई दुनियामें कुछ अहदे-कुहनके[४] भी निशाँ होंगे
अजायबख़ानोंमें रक्खेंगे ईमानोंको, दीनोंको
बग़लका बोझ होकर रह गये हैं एक मुद्दतसे
जो चंचल हाथ रख देते थे मल-दलकर हसीनोंको

यह मोड़ वोह है कि परछाइयाँ भी देंगी न साथ
मुसाफ़िरोंसे कहो, उसकी रहगुज़र आई
फ़ज़ाको जैसे कोई राग चीरता जाये
तेरी निगाह दिलोंमें यूँ ही उतर आई ॥

---

१. मुसीबतोंकी, २. अमरत्वके स्रोत, ३. चिनगारियों और पत्थरोंको, ४. पुराने ज़मानेके ।

दुनियामें इस ढबसे रहिए
दुनियाके, दुनियासे न्यारे

यूँ तो हज़ार दर्दसे रोते हैं बदनसीब
तुम दिल दु:खाओ वक़्ते-मुसीबत तो बात है

कुछ इन्तिज़ारका उनवान तो बदल जाता
जो ग़मकी शाम हुई थी तो सुबह भी होती

हासिले - हुस्नो - इश्क़ बस है यही—
आदमी - आदमीको पहचाने।

तुम अपने घरके थे, तुमसे कोई पर्दा न था, लेकिन—
जो दिलकी बात थी कमबख़्त वह मुँहसे नहीं निकली

कोई जिये तो क्या जिये, कोई मरे तो क्या मरे ?
मर्गो - हयात[१] दोनों ही जब न हों एतबारके[२]

नींद आने लगी सितारोंको
छिड़ गये अहले-ग़मके अफ़साने
तू कभी बिजलियोंसे खेला है ?
तू किसीकी निगाह क्या जाने ?

यह मेरे नसीब कि जौरे-हुस्नके कुछ हिजाब-से[३] उठ चले
यह तेरा करम[४] कि मुझे मिटाके तू आज मुझसे ख़फ़ा भी है

---

१. मृत्यु-जीवन, २. विश्वास योग्य, ३. सौन्दर्यके अत्याचारका पर्दा-सा, ४. कृपा।

न यूँ तसवीरे-उजलत[१] बनके बैठो मेरे पहलूमें
मुझे महसूस होता है, कोई उठता ही जाता है

यह शोला मुहब्बतका[२], यह आँच मुहब्बतकी
इन्सानकी मिट्टीको अक्सीर बनाये हैं

अक्स पड़ा जब हुस्नका तेरे
आबे-हयातको आये पसीने
राहे - मुहब्बतमें पड़ते हैं
लाखों मक्के, लाख मदीने

शरीके-बज़्म[३] होकर यूँ उचटकर बैठना तेरा
खटकती है तेरी मौजूदगीमें भी कमी तेरी

यह भी नज़्मे-हयात[४] है कोई
ज़िन्दगी-ज़िन्दगीका मातम है
ऐ मुहब्बत तू एक अजाब[५] सही
ज़िन्दगी बे तेरे जहन्नुम[६] है

१. जल्दी जानेकी इच्छासे, २. प्रेम-चिनगारी, ३. साथ होते हुए भी, महफ़िलमें शामिल रहनेपर भी, ४. जीवन-व्यवस्था, ५. अभिशाप, ६. नरक, दोज़ख़ ।

क्यों हम पै नहीं इनायत तेरी
यह पूछने वाले कौन है हम
छुटकर तेरे आस्ताँ से[१] ऐ दोस्त !
तू ही कह दे कहाँ रहें हम ! \

न जाने अश्क-से आँखोंमें क्यों हैं आये हुए
गुज़र गया है ज़माना तुझे भुलाये हुए
यह नर्म-नर्म हवाएँ हैं किसके दामनकी
चिराग़े-दैरो-हरम[२] क्यों है झिल्मिलाये हुए ?

जमाना भूल गया, बस वही नहीं भूले
गुज़र गई जिन्हें इक उम्र याद आये हुए

इश्क़की कुछ हवा लगी जब उन्हें
कुछ उड़ा रंग, कुछ निखर भी गये
आज हम उनको मेहर्बाँ पाकर
खुश हुए और जीमें डर भी गये
हम थे कुछ बेक़रार[३] पहलेसे
और वह कुछ बेक़रार कर भी गये
अब भी क्यों आँखें भीग जाती हैं ?
अब तो वह ध्यानसे उतर भी गये

रोते-जाते थे तेरे हिज्र-नसीब
रात फुर्क़तकी ढलती जाती थी

---

१. द्वारसे, २. मन्दिर-मस्जिदके दीपक, ३. परेशान ।

तेरे उन आँसुओंकी याद आई
ज़िन्दगी जिनमें मुसकराती थी
वह तेरा ग़म हो या ग़मे-दुनिया
शमअ्-सी दिलमें झिलमिलाती थी

—इन्द्रधनुष

यह नर्म-नर्म हवा झिल्-मिला रहे हैं चिराग़
तेरे ख़यालकी ख़ुशबूसे बस रहे हैं दिमाग़

न हमसे पूछ हुस्नो-इश्क़का राज़े-निहाँ[1] क्या है ?
बहुत नज़दीकसे इस ज़िन्दगीको हमने देखा है
बीते हुए ज़माने यूँ याद आ रहे हैं
मुँह फेरकर वोह जैसे कुछ मुसकरा रहे हैं

अक्सर यूँ भी याद आये तुम
आँखोंमें आँसू, लबपै तबस्सुम[2]

आदमीके हाले-अबतरपर[3] फ़रिश्ते रो दिये
हम ख़ुदा थे, क़िस्मतोंसे टुकड़े-टुकड़े हो गये

पौ फटी ज्यों बिरहनकी छाती
जागीं अब आँखें मदमाती

---

१. गुप्त भेद, २. ओठोंपर मुसकान, ३. बुरे हालपर, दुर्दशापर।

आ रहा है हुस्न पर तेरे शबाब
आफ़ताब आमद, दलीले-आफ़ताब[१]

सोती है हुकूमत तो रह जायगी वह सोती
अल्लाहकी लाठीमें आवाज़ नहीं होती

जो ज़हरे-हलाहल है, अमृत भी वही नादाँ।
मालूम नहीं तुझको अन्दाज़ ही पीनेके ॥

ख़ुदाओं, देवताओं और फ़रिश्तोंने तो झकमारा
मुहब्बतको मुहब्बत कर दिया मिट्टीके पुतलोंने

हुस्नकी नर्मियोंने लौ दे दी
मुसकराना तेरा है याद मुझे

कौन यह ले रहा है अँगड़ाई ?
आस्मानोंको नींद आती है

आज आँखोंमें काटले शबे-ग़म[२]
ज़िन्दगानी पड़ी है, सो लेना

शबे-फ़ुर्क़तके[३] सन्नाटोंमें अक्सर
सदा[४] आती है—"मैं तुझसे कहाँ दूर" ?

---

१. सूर्योदय होना ही सूर्यके होनेका प्रमाण है। भाव यह है कि यौवन उसी तरहसे प्रस्फुटित हो रहा है, जैसे ऊषासे सूर्य झाँकता हुआ निकलता है, २. दुःखकी रात, ३. विरह-रात्रिके, ४. आवाज़।

वोह् ज़िन्दगीके कड़े कोस, याद आते हैं
तेरी निगाहे-करमका[1] घना-घना साया

जो तेरे गेसुए-पुरखमसे[2] खेल भी न सकी
उन उँगलियोंसे सितारोंको छेड़ सकता हूँ

कुछ नहीं कहतीं निगाहें, मगर—
बात पहुँची है कहाँ-से-कहाँ ?

क्या करें हम भी, क्या करो तुम भी
आदमी-आदमीका दुश्मन है

देख रफ़्तारे-इन्क़िलाब 'फ़िराक़' !
कितनी आहिस्ता और कितनी तेज़ ?

काना-फूसी है कुछ सितारोंमें
इश्क़की बात कितनी दूर गई ?

वोह रंगे-रुख़ था, उठाई है जब किसीने निगाह
शराब जैसे छलकते-छलकते रह जाये

मेरे नग़्मोंका यह हासिल
दुनियाको सीनेसे लगाले

एक मुद्दतसे दिले-ग़मगींपै था इक बोझ-सा
आज तेरी यादमें रोये तो हलके हो गये

---

१. कृपादृष्टिका २. घुँघराले बालोंसे ।

देख तारों भरी यह रात 'फ़िराक़' !
आँसुओंका क़फ़स है दुनियापर

यह दुनिया मुझे यूँ नज़र आ रही है
कहीं जैसे कोई चला जा रहा हो

उनकी हिमाक़तोंका ठिकाना भी है कोई
दुनिया बिगाड़कर जो बनाते हैं आक़बत[1]

तेरे लड़ने पै खुला, मुझ पै तेरे इश्क़का हाल
तुझे इतनी थी मुहब्बत मुझे मालूम न था ॥

सूनी - सूनी विरहकी घड़ियाँ
लुट गये दिन और छिन गईं रातें

मैं हूँ, शाम है, तनहाई है
तुम भी जो होते अच्छा होता

ख़ुदाको अहले-जहाँ जब बना चुके तो 'फ़िराक़' !
पुकार उठे कि ख़ुदाने हमें बनाया है

आज यही दुनिया है जहन्नुम
कल यही दुनिया जन्नत होगी

फिर हुए वीराने आबाद
इन्क़िलाब ज़िन्दाबाद

—धरतीकी करवट

२३ मार्च १९५८ ई०]

---

१. परलोक ।

मुनव्वर लखनवी

कुछ खुशक़िस्मत मुँहमें चाँदीका चम्मच लिये हुए उत्पन्न होते हैं, कुछ भाड़ो और काँटोमें भड़ पड़ते है। कुछ हजरातको तलवारोके सायोंमें पैदा होनेकी सआदत नसीब होती है तो कुछ पोतड़ोंके रईस कहलानेका हक़ रखते है। हमारे मुनव्वर साहबको पुश्तैनी शाइर होनेका फ़ख्र हासिल है।

> शाइरीसे न 'मुनव्वर'को हो क्योंकर रग़बत ?
> पाँच पुश्तोंसे यही शौक़ चला आता है ।।

आपने जिस मकानमें जन्म लिया, उसके दरो-दीवार नग़मए-शाइरीसे गूँज रहे थे। आप जिनकी लोरियाँ पालनेमें पड़े सुनते थे, वे भी शाइराएँ थीं। जिन बुजुर्गोंकी गोदियोंमें खेलकर आप परवान चढ़े और सही मानोंमें इन्सान बने, वे सब भी शाइर थे। आपके परमहापितामह मुन्शी उदयराज 'मतला', महापितामह मुन्शी ईश्वरीप्रसाद 'शुआई' और पितामह मुन्शी पूरनचन्द्र 'ज़र्रा' फारसीके बहुत अच्छे शाइर हुए हैं।

आपके दो ताया--मुन्शी रामसहाय 'तमन्ना' और मुन्शी माताप्रसाद 'नैसाँ' उर्दूके शाइर थे। आपके पिता मलिक-उल-शुअरा मुशी द्वारिकाप्रसाद 'उफ़ुक'ने अपने युगमें काफ़ी नाम पाया। शाइरके अतिरिक्त गद्य-लेखक भी बहुत अच्छे थे। 'उफ़ुक' साहबने क़ौमी, मज़हबी, नैतिक, प्राकृतिक, आशिक़ाना आदि सभी रंगोमें नज़्में कहीं है। आप नासिख-स्कूलके अनुयायी थे और ग़ज़लें अमीरो-दाग़के रंगमें कहते थे। रामायण, महाभारत, गुरु गोविन्दसिंहकी जीवनी, टाड्राजस्थान आदिके आपने गद्य-पद्यमें अनुवाद किये और कई उपन्यास और नाटक भी लिखे।

मुनव्वर साहबकी चाची श्रीमती किशन प्यारी साहिबा भी शाइरी करती थीं और बड़ी बहन श्रीमती धर्मदेवी 'धर्म' हिन्दी-उर्दू दोनोंमें कविता करती हैं। मुनव्वर साहबके पिताके मामा मुंशी शंकरदयाल 'फ़रहत' और स्वयं के मामा मुंशी जगदम्बाप्रसाद 'क़ैसर' लखनवी भी काफ़ी मशहूर शाइर थे। जब ननिहाल, ददिहाल और पितृवंशका वातावरण शाइराना हो, तब यह कैसे सम्भव था कि आपकी जीवन-संगिनी ग़ैर शाइराना खान्दान-की होतीं। वे भी उर्दू-फ़ारसीके मशहूर शाइर मुंशी लक्ष्मणप्रसाद 'सद्र' की साहबज़ादी हैं।

मुनव्वर साहबके पूर्वज नादिरशाहके आक्रमणके बाद दिल्लीसे लखनऊ जा बसे थे। वहीं आपका १८९७ ई० में जन्म हुआ। आपके चारों तरफ़ शाइराना फ़ज़ाएँ झूम रही थीं। अतः आपने भी १३ वर्षकी उम्रसे शेर कहना शुरू कर दिया।

शेर कहना तो कुछ अचंभेकी बात न हुई, न कहते तो ज़रूर लोगोंको आश्चर्य होता। चुनांचे ख़ुद फ़र्माते हैं—

मिला था विरसए - अजदादमें जो बाग़े सुख़न।
वह पायमाले-सितमगारी ए-ख़िज़ाँ न हुआ॥
'उफ़ुक़'के फ़ैज़का दरिया है आजतक जारी।
हज़ार शुक्र कि मैं नंगे-ख़ान्दाँ न हुआ॥

प्रारम्भमें आप अपने पितासे ही शाइराना-सबक़ लेते रहे। फिर १९१५ ई० में उस युगके ख्याति प्राप्त उस्ताद मुंशी नौबतराय 'नज़र' को आपने अपना कविता-गुरु बनाया। यूँ तो आपके पिता उफ़ुक़ साहब और उस्ताद नज़र साहब नज़्म और ग़ज़ल दोनोंमें महारत रखते थे। लेकिन 'उफ़ुक़' साहब नज़्म-गो और 'नज़र' साहब ग़ज़ल-गोकी हैसियतसे विशेष प्रसिद्ध थे। परिणाम इसका यह हुआ कि उत्तराधिकार स्वरूप यह दोनों कलाएँ मुनव्वर साहबके आधीन हैं। नज़्म, ग़ज़ल, रुबाइयाँ कहनेके अलावा आपने कई संस्कृत-ग्रन्थोंको

उर्दूमें नज़्म किया है। आप द्वारा उर्दू-साहित्यका जो भण्डार भरा गया है, उसका विवरण कुछ इस प्रकार है—

१. **काएनाते-दिल**—१९३९ ई०में प्रकाशित ३२० पृष्ठका नज़्मोंका संकलन
२. **रुबाइयाते-मुनव्वर**—२०० रुबाइयोंका सकलन (अप्रकाशित)
३. **नज़रे-अदीब**—खमरियाती रुबाइयोंका जेबी संकलन
४. **नवाए-कुफ्र**—अब तककी ६००-७०० ग़ज़लोंका संकलन (अप्रकाशित)
५. **नक़्शे-मुनव्वर**—१९३९ के बादकी नज़्मोंका संकलन (अप्रकाशित)
६. **कुमार सम्भव**—कालिदासकी अमरकृतिका १७९ पृष्ठमें उर्दू पद्यानुवाद
७. **भगवतगीता**—उर्दू पद्यानुवाद
८. **सच्ची राह**—बौद्ध-ग्रन्थ धम्मपदका उर्दू पद्यानुवाद
९. **वज्दाने-हाफिज़**—फ़ारसीके अमर शाइर हाफ़िज़ शीराज़ीके फ़ारसी कलामको चुनकर उर्दूमें पद्यानुवाद
१०. **इल्हमाते-ईरानी**—ईरानी जबानके शाइरोंकी शाइरीका उर्दू पद्यानुवाद (अप्रकाशित)
११. **अफ्कारे-बुलन्द**—संसारके महान् पुरुषोंके वचनोंका पद्यानुवाद (अप्रकाशित)
१२. **फ़रमाने-इलाही**—कुरान शरीफ़के उपदेशोंका पद्यानुवाद (अप्रकाशित)
१३. **गीताञ्जलि**—डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी गीताञ्जलिका पद्यानुवाद
१४. **वाल्मीकि रामायण**—पद्यानुवाद
१५. **दुर्गासप्तशती**—पद्यानुवाद

वर्तमानमें आप कालिदासकी प्रसिद्ध कृति रघुवंश और जर्मनके प्रसिद्ध कवि गेटेकी कृतिको नज्म करनेमें लीन है।

आप रेलवेके आडिट विभागमें मुलाज़िम थे। १९२७ई० में आपका तबादला देहली हो गया, तबसे आप देहलीमें ही बस गये है। आपकी भाषा लखनवी है, किन्तु शाइराना रंग ग़ैर लखनवी है। 'आतिश' 'ग़ालिब' 'अनीस' और 'इकबाल'के आप क़ाइल है। आपके क़लाममें

दार्शनिक पुट अक्सर रहती है। बर्नाडशा, शेक्सपियर और कीट्ससे आप काफी लाभान्वित हुए हैं। संस्कृतमें बाल्मीकि और कालिदासके भक्त तो हिन्दीमें—जायसी, तुलसी, कबीर, नानक, सूरदास, मीरा और बिहारीपर लट्टू।

बहुत भावुक और कोमल हृदय रखते है। तनिक-सी बातमें क्रुद्ध और तनिक-सी बात पर क्षमाके अवतार नज़र आते है। वैष्णव सम्प्रदाय पर आस्था रखते है, किन्तु सभी धर्म-स्थानोंमें पूर्ण श्रद्धासे जाते है और उनके उत्सवोंपर नज़्में पढ़कर अपने सर्व-धर्म-समभाव और उदारताका परिचय देते है। बहुत सादगीसे रहते है। देशभक्त और गान्धीवादी है। अपनी 'वतन परस्ती' आप इस तरह व्यक्त करते है—

यही सरमाया[1] अपना है, यही है काएनात[2] अपनी
इसी पर मुनहसिर[3] दुनियामें है हर-एक बात अपनी
यह आईना दिखाता है, हमें उम्मीदका जल्वा
वतनकी फ़ारिग़ुलबालीमें[4] पिन्हाँ है निजात[5] अपनी
इसीकी नज़्र है एक-एक लमहा[6] जिन्दगानीका
न कोई दिन है दिन अपना, न कोई रात रात अपनी
पसन्द आये न क्यों हमको परिस्तारे-वतन[7] होना
इसीके दमसे वाबस्ता[8] है मौत अपनी, हयात[9] अपनी

मुनव्वर साहबकी वतन-परस्तीमें कोई उबाल नहीं है। उसे प्रकट करनेमें उनके मुँहसे चिगारियाँ भी नहीं निकलतीं। वे अपनी देशभक्तिको न कोई बडा कारनामा समझते हैं, न किसी दूसरे पर अपनी देशभक्तिका बोझ लादते हैं, न एहसान जताते हैं। क्योंकि देश-प्रेम आपका

१. पूँजी, २. दुनिया, ३. निर्भर, ४. वैभवमें, निश्चिन्ततामें, ५. छुटकारा, सुख, ६. क्षण, ७. देशभक्त, ८. सम्बन्धित, ९. ज़िन्दगी।

स्वाभाविक है। आपका विश्वास है कि देश सुखी और सम्पन्न होगा, तभी हमें दुःखोंसे छुटकारा मिलेगा। जब हमें इसी पृथ्वी पर मरना और जीना है, तब हम इसी पृथ्वीकी उन्नतिके लिए प्रत्येक क्षण क्यों न समर्पित कर दें? 'मुबारक आजू' नज्ममें अपनी अभिलाषा आप इस तरह व्यक्त करते हैं—

हुब्बे-वतनके[1] राग अलापे जो हर नफ़स[2]
यारब! ज़बाँ मिले वोह, दहन[3] वोह मिले मुझे
जिसका हर-एक तार हो सरिश्त-ए-वफ़ा[4]
मरने पै ओढ़नेको कफ़न वोह मिले मुझे
जिसमें न ग़ैर मुल्ककी मिट्टीका ज़ुज़्व[5] हो
जिसमें हो खाक हिन्दकी तन वोह मिले मुझे

हिन्दु-मुस्लिम ऐक्यके आप सदैव अभिलाषी रहे हैं। 'हिन्दू-मुसल्मानोंसे, नज्म कहते हुए फ़र्माते हैं—

क्यों अक़्लके दुश्मन बनते हो, जिससे हो भला वह काम करो
मज़हबके लिए नाहक लड़कर मज़हबको न तुम बदनाम करो
यह लड़ना-भिड़ना बन्द करो, हो लहर रवाँ आज़ादीकी
यह दौलत हाथ जब आ जाये, फिर चैन करो, आराम करो

देश-भक्ति पूर्ण, धार्मिक, नैतिक, प्राकृतिक आदि आपने सब तरहकी नज़्म कही है। स्थानाभावके कारण केवल दो नज़्मोंके संक्षेप अंश दिये जा रहे हैं। नारीकी सृष्टि जब हो गई तो विधाताको उसमें कुछ अभाव-सा खटका। एकाएक उसे भान हुआ और उसने नारीको एक विशेष वस्तु प्रदान करके

१. देश-प्रेमके, २. घड़ी, ३. मुख, वाणी, ४. नेकीसे बँधा हुआ, ५. अंश।

उसे विश्वकी सर्वश्रेष्ठ कला बना दिया। वह वस्तु क्या थी, जाननेके लिए 'नज़ूले-हया'के चन्द शेर पढ़े—

आबो-गिलसे[1] जब नुमायाँ[2] हो गये आसारे-हुस्न[3]
दस्ते-क़ुदरतने[4] दिया तरतीब[5] जब गुलज़ारे-हुस्न[6]
रह गया कुछ ना मुकम्मल[7] साज़ो-सामाने-कशिश[8]
दिलरुबा रंगीनियोंसे था, न दामाने-कशिश[9]
इश्वए-दमसाज़ भी[10] था, ग़मज़ए-ग़म्माज़[11] भी
नाज़[12] भी उसका हसी था, दिलरुबा अन्दाज़[13] भी
ताहम[14] इन फूलोंमें शाने-दिलरुबाई[15] ही न थी
काफ़िर अन्दाज़ीमें शामिल पारसाई[16] ही न थी
फूल यह इक जौहरे-नायाबसे महरूम[17] थे
गोहरे-ग़ल्ताँ थे लेकिन आबसे महरूम[18] थे।
चौंक उठी क़ुदरत यकायक यह नज़ारा देखकर
इक नज़र डाली फिर उसने हुस्नकी तसवीर पर
जामए-निसवानियतसे देके उस क़ालिबको ज़ेब[19]
एक जौहर उसमें डाला आबदारो - दिलफ़रेब[20]
जुम्बिशें पलकोंकी तहज़ीबे - हयासे[21] रुक गईं
हुस्न जाज़िब[22] बन गया जिस वक़्त आँखें झुक गईं

१. हवा-मिट्टीसे, २. प्रकट, ३. रूपके चिह्न, ४. विधाताने, ५. निर्माण किया, ६. सौन्दर्य रूपी वाटिकाको, ७ अपूर्ण, ८. आकर्षण-का कारण, ९. चित्तको मोह लेनेवाली वस्तुसे रहित, १०. यद्यपि माशूक़ाना हाव-भाव थे, ११. आँखोंमें जादू था, १२. हाव-भाव, १३. दिल-को मोहनेवाले नखरे, १४. तौ भी, १५. दिलोंको आकर्षित करनेवाली शान, १६. सुशीलता, १७. अपूर्व गुणसे रहित, १८. मोती थे, परन्तु बे-आब, १९. नारीका शरीर देकर, २०. दिल लुभानेवाला, २१. लाजसे, २२. पूर्ण आकर्षक।

जयपुरके सफ़रमें एक राजपूत सुन्दरीको देखकर 'उपले वाली' नज़्म लिखी। सफ़रका उल्लेख करते हुए उपलेवालीके सौन्दर्य्यका वर्णन करते हैं—

शीरीं बयानियाँ थीं, रंगीं नवाइयाँ थीं[1]
मलबूस पारसामें काफ़िर अदाइयाँ थीं[2]
महशरख़िरामियाँ थी रानाइयोंमें उसकी[3]
था माहे-नौका परतव अँगड़ाइयोंमें उसकी[4]
गालोंकी ताज़गीमें गुलशन महक रहे थे
आँखोंकी पुतलियोंसे तारे छिटक रहे थे
भर-भरके जामे-सहबा गुलको पिला रही थी[5]
होंटोंकी मुसकराहट कलियाँ खिला रही थी
अन्दाज़ था अनोखा थी हर अदा अछूती
पलकें चला रही थीं तलवार राजपूती
उपलोंका टोकरा इक रक्खा हुआ था सरपर
सीने पै बोझ था कुछ,कुछ बोझ था कमरपर
यह तो ख़ुदा ही जाने क्या बात कर रही थी
फ़ुर्तीमें तितलियोंको भी मात कर रही थी
ज़ेवर न ज़ेबे-तन[6] थे, फिर भी सजी हुई थी
नाज़ुक बदन थी ऐसी, गोया छुई-मुई थी

१. मधुर एवं रंगीन बोली, २. सदाचारका परिधान पहिने हुए भी ईमान खराब करनेवाली अदाएँ थीं, ३. चाल कयामतकी थी, ४ अँगडाइयाँ लीं तो मालूम हुआ दोजका चन्द्रमा है, ५. मालूम होता था, जैसे फूलोंको शराब पिला रही हो, ६. शरीरपर गहने न थे।

उपलेवालीकी रूप-छटाका वर्णन करते हुए मुनव्वर साहब शाइराना रौमें बहते नहीं है। देखिए क्या पाकीज़ा तसवीर खींचते है—

इस नाज़ुकीमें लेकिन शामिल था बाँकपन भी
फूलोंकी शाख़में थे तलवारके चलन भी
थी आनकी पुजारन वह बातकी धनी थी
इफ़्फ़तमें[१] लक्ष्मी थी, इस्मतमें[२] पद्मिनी थी
दामाने-बुल्हविसको[३] पैरोंसे रौंदती थी
ख़िरमन पै मासियतके[४] बिजली-सी कौंदती थी
पाकीज़गीका जौहर[५] करता था ज़ू-फ़िशानी[६]
थी जिसके घरकी रानी, थी उसके घरकी रानी
थी रश्के-सद्अमारत[७] उसके लिए ग़रीबी
नादारियोंमें[८] उसकी शामिल थी ख़ुशनसीबी
यह भी न रास्तेमें मासूमको पता था
कौन उसकी सिम्त[९] कैसी नीयतसे देखता था
खींचे थी हाथ अपना नज़रे-दिलो-जिगरसे
बे लाग शमअ थी यह परवानए-नज़रसे
इस्मतके बोस्ताँकी[१०] इक मुँहबँधी कली थी
सिर्फ़ अपने कृष्णकी ही राधा यह लाडली थी
दिलमें यह सोचकर मैं, लेकिन था वक़्फ़े-हैरत[११]
उपलोंके पाथनेसे क्या दिलबरीको निस्बत ?

१. पवित्रतामें, २. शीलवती होनेमें, ३. असदाचारको, कुशील-भावको, ४. पापरूपी खलिहानपै, ५. पवित्रताकी दिव्यता, ६. प्रकाश, ७. उसकी ग़रीबी सैकड़ोंके लिए ईर्ष्या योग्य थी, ८. दरिद्रताओंमें, ९. तरफ़, १०. शील- उद्यानकी, ११. आश्चर्य चकित।

जो पैकरे-हसीं हो, लालो - गुहरके लायक़[1]
जिसकी जबींने-ताबॉं हो ताजे-ज़रके लायक़[2]
हर वक़्त बाँदियोंको रहना था साथ जिसके
मुहरे-लबे-शहीके क़ाबिल थे हाथ जिसके[3]
फ़ितरतकी लग़्जिशोंसे[4] क्यों जाए उसके माथे
जो हुस्नकी हो देवी, उसे वह हाय पाथे !

चुने हुए शेर

मुन्नव्वर साहबने हमारी प्रार्थनाको मान देकर अपनी ६००-७०० ग़ज़लोंमें-से अपने पसन्दीदा ५६४ अशआर भिजवाये हैं; जिनमेंसे स्थानाभावके कारण यहाँ केवल ८० अशआर चुनकर दिये जा रहे हैं—

मनुष्योंके समानाधिकारकी भावना ग़जलके इस शेरमें देखिए किस खूबीसे व्यक्त की है—

नहीं हर राहरौंपर जो कुशादा ।
अब ऐसी रह-गुज़ारोंसे हज़र है ॥

यानी जो मार्ग प्रत्येक यात्रीके लिए विस्तृत न होकर, किन्हीं विशेष यात्रियोंके लिए विस्तृत होते हैं। उन मार्गोंपर चलना उचित नहीं ।

जो दूसरोंसे घृणाके भाव रखते हैं, वह स्वयं घृणित है। इस भावको इसी ग़ज़लके दूसरे शेरमें यूँ पेश किया है—

तुझे रिन्दोंसे है परहेज नासेह !
मुझे परहेज़गारोंसे हज़र[5] है

१. रूपका अवतार जो लाल और मोतीसे लदने योग्य हो, २. जिसका चमकता मस्तक ताजके योग्य हो, ३. जिसके हाथ बादशाही मुहर लगाने योग्य थे, ४. विधाताकी भूलसे, ५. परहेज़, नफ़रत ।

मुनव्वर साहब ग़मे-जानाँके बजाए ग़मे-दौराँके क़ायल हैं। विश्वकी वेदनाओंको आप अपनी वेदना समझते हैं। पर-दुःखसे कातर होकर फ़र्माते हैं—

किसीका ज़ख़्म हो, मेरा ही वह बने नासूर
किसीका चाक हो, मेरा ही चाक कहलाये

इश्कको आप जानका अज़ाब न समझकर जीवन-आनन्द मानते है—

इश्क़ बक़ाए-रूह[1] है, इश्क़ ग़िज़ाए-रूह[2] है
यह जो नहीं तो दहरमें[3], लुत्फ़े-हयात[4] ही नहीं

आपके यह । माशूकका जो बुलन्द मर्तबा है, उसकी झलक इस शेरमें देखिए—

सज़ाए-नारे - जहन्नुम[5] भी हो अगर तो क़ुबूल
जो तुम कहो तो गिरफ़्तारे-सद - अज़ाब[6] रहूँ

प्रेयसीकी मुसकान मुलाहिजा फ़र्माएँ—

जिस तरह आप मुसकराते हैं
ऐसे कोई कली नहीं खिलती

चन्द शेर और—

क्यों सुनाती है मुझे अपना फ़िसाना[7] शबो-रोज़[8]
इतनी फ़ुर्सत मुझे ऐ गर्दिशे-ऐय्याम[9] नहीं

कुछ मुझे भी तो है नामूसे-मुहब्बतका[10] लिहाज़
ख़ाक उड़ाने कहीं जाऊँ यह मेरा काम नहीं

१. आत्माकी स्थिरता, २. आत्माकी ख़ुराक, ३. विश्वमें, ४. जीवन-आनंद, ५. नरककी यंत्रणा, ६. सैकडो मुसीबतोंमें फँसा हुआ, ७. किस्सा, ८. रात-दिन, ९. जमानेकी गर्दिश, १०. प्रेमकी प्रतिष्ठाका।

अब और ही कुछ हो गई ईमानकी तावील[१]
वाइज़को[२] भी पैमाना ब-लब[३] देख रहा हूँ

हमको तो सिर्फ़ चाके-गरीबाँसे[४] काम था
इतना कहाँ दिमाग़ कि फ़िक्रे-रफ़ू करें
इन्सानके उरूजका[५] क्या खाक एतबार[६]
बिगड़ा वहीं हुबाबकी[७] सूरत, जहाँ बना

तुम्हारी नज़र और उठें मेरी जानिब !
यह क्या देखता हूँ निगाहोंसे अपनी ?

अजल[८] आई क़रार[९] आनेसे पहिले
चमन उजड़ा बहार आनेसे पहिले

लेनेके वास्ते तो ले लूँ मुक़ाम तेरा
लेकिन सवाल यह है फिर तू कहाँ रहेगा ?
मुम्किन नहीं चमनमें दोनोंकी ज़िद हो पूरी
या बिजलियाँ रहेंगी या आशियाँ रहेगा

ख़बर नहीं कि बुलानेका मुद्दआ क्या है ?
बुला रहे हैं मगर ग़ैरकी ज़बाँसे हमें

ज़मीनो-आस्माँमें फ़ासिला बढता ही जाता है
कहाँ तक देखिए ले जाये तुझको तेरी अँगड़ाई

---

१. परिभाषा, २. उपदेशकको, ३. प्याला ओठोंसे लगाये, ४. गरेबान फाड़नेसे, ५. उत्थानका, ६. विश्वास, ७. बुलबुलेकी तरह, ८. मौत, ९. चैन ।

जानता हूँ यह कि अर्ज़े-शौक़ है तौहीने-इश्क़[1]
फिर भी अर्ज़े-शौक़को मजबूर हो जाता हूँ मैं

क्या कहीं भूल गया मुझको बनानेवाला
कि मेरी बात बिगड़ती ही चली जाती है
क्या कभी मौतके तेवर नहीं इसने देखे
ज़िन्दगी है कि अकड़ती ही चली जाती है

अगर जन्नत भी तुझको मिल गई क्या तेरे हात आया
तुझे ख़ुद ख़ूबि-ए-आमालका इनआम[2] होना था
नहीं मालूम की, किस - किसने गुस्ताखी-ए-नज़्ज़ारा[3]
इलाही क्या हमीको मूरिदे - इल्ज़ाम[4] होना था

फिर कोई क़ैद न तेरे लिए बाक़ी रहती
तू अगर्चे दामसे[5] ख़ुद अपनी रिहा हो जाता
अपनी अज़्मतका[6] नहीं ख़ुद तुझे ग़ाफ़िल एहसास[7]
बन्दगी अपनी जो करता तो ख़ुदा हो जाता

आँखोंमें नींद भरके ज़बाँ हो गई ख़मोश
है ख़त्म अपनी रामकहानीका सिलसिला

---

१. प्रेमका अपमान २. सदाचारका पुरस्कार, ३. घूरनेका अपराध, ४. दोषी, ५. क़ैदसे, जालसे, ६. गौरवका, ७. ज्ञान, अनुभूति ।

उठाकर ले गये सूए-लहद[1] होते ही बन्द आँखें
थके-माँदे मुसाफ़िरको भी सुस्ताने नहीं देते

दामनसे अपने दाग़ गुनाहोंके धो दिये
मजबूरियों पै अपनी नज़र करके रो दिये
क्या जाने किस ख़यालने मग़मूम[2] कर दिया
देखा ज़रा किसीकी तरफ़ और रो दिये

मेरी फ़नाका[3] निहायत बुलन्द मर्तबा[4] है
चिराग़े-सुबह नहीं, आफ़ताबे-शाम हूँ मैं

अब जाके आर्ज़ूका मुकम्मल हुआ है नक़्श
सब मानने लगे कि मैं दीवाना हो गया

क़दम उठते नहीं बेकार मेरे
कहीं मैं याद फ़र्माया गया हूँ

भला कुफ़्रको कुफ़्र किस तरह समझें ?
जब ईमान ही को न ईमान जाना

काश तुम इसका फ़ैसला मेरे ही दिल पै छोड़ दो
किसकी मैं बन्दगी करूँ, कौन मेरा ख़ुदा बने

बढ़के काबेसे भी हसीं है कौन ?
झुक रहा हूँ सलाम करनेको

---

१. क़ब्रिस्तानकी तरफ़, २. ग़मगीन, दुःखी, ३. मिटनेका, ४. उच्च स्थान ।

सैकड़ों मेरी सियह-बख़्तीसे[१] पाते हैं फ़रोग़[२]
टिमटिमाते हैं, बहुत तारे अँधेरी रातमें

ख़ुद्दारियोंके[३] होते हर शख़्सके क़दम पर
झुकता है क्यों मेरा सर दुनिया नहीं समझती

दुनियाको अब तो शर्म-सी आने लगी है कुछ
क्या जाने किस नज़रसे मुझे देखती रही
सिज्दोंका नक़्श, नक़्शे-जबींसे[४] मिटा दिया
किस दर्जा कामयाब मेरी ज़िन्दगी रही

कर रहा हूँ सवाल क्यों तुमसे ?
कहाँ इसका जवाब है कोई ?

तुमने इतना फ़रोग़[५] बख़्शा है
है अँधेरा भी रोशनी मुझको

मर्गो-हस्तीमें[६] कशा-कश[७] होगी
नग़्म-ओ-हुस्नको[८] यकजाँ न करो

कौन - सी चोट कौन कर बैठे
अब तो मैं हर किसीसे डरता हूँ

---

१. काले दिनोंसे, दुर्भाग्य रूपी अँधेरी रातसे, २. प्रकाश, ३. स्वाभिमान होने पर भी, ४. माथेसे, ५. प्रकाश, ६. मौत-ज़िन्दगी में, ७. खींचतान, ८. संगीत और रूपको।

जब ख़मोशीकी मदद लेनी पड़ी
गुफ़्तगूमें वह मुक़ाम आ ही गया

हुजूमे-रंजो-अलममें[1] भी है ख़ुशीकी तलाश
मैं कर रहा हूँ अँधेरेमें रोशनीकी तलाश

थी वह जुम्बिश[2] ख़ुद अपने दामनकी
जिससे गुल[3] हो गया चिराग़ अपना

दिलके अन्दाज़े-फ़ुग़ाँसे[4] नहीं वाक़िफ़ कोई
बे-ज़बानोंकी ज़बाँ से नहीं वाक़िफ़ कोई

आदमीका साथ देता है तही-दस्तीमें[5] कौन ?
कर गया साहिल[6] किनारा ख़ुश्क जब दरिया हुआ

ऐ ज़िन्दगी! ख़ुदाके लिए अब मुआफ़ कर
बैठी हुई है मौत मेरे इन्तिज़ारमें

हम तो कुछ और समझते तुमको
होके मजबूर ख़ुदा मान लिया

मुँह तेरा देखकर मैं जब उट्ठूँ
कोई ऐसी सहर[7] नहीं आती

१. दुःख-शोककी अधिकतामें, २. कम्पन, ३. बुझ गया, ४. आहोंके ढंगसे, ५. ख़ाली हाथमें, अभाव ग्रसित होनेपर, ६. तट, किनारा, ७. सुबह ।

दुनियामें रहकर हर इन्सॉ दरियासे रवादारी सीखे
लहरें भी उट्ठा करती हैं, किश्ती भी चलती जाती है
जीनेकी हवस[1] बढ़ जाती है, कुछ शायद उम्रके ढलनेसे
लौ देती जितनी-जितनी ही यह शमअ़ पिघलती जाती है

हज़ार कुफ़्रकी रंगीनियोंका मरकज़[2] है
वह इक निगाह, जिसे पारसा[3] समझता हूँ

उस सितमगर पै है बेकार सितमका इल्जाम
जिसको एहसास[4] न हो अपनी सितमगारीका[5]
बल जबींपर[6] है तो फिर लबपै तबस्सुम[7] क्यों है ?
एक अन्दाज़ मुक़र्रर हो सितमगारीका

हमको गदाई[8] देते न क्योंकर ?
करते भी किसपर तुम बादशाही ?

पर्देसे लाऊँ क्या तुम्हें बाहर निकालकर
अपनी नज़रसे आप छुपा जा रहा हूँ मैं

क्या बचाते किसी सफ़ीनेको[9]
अपनी किश्तीको ख़ुद डुबो बैठे

१. तृष्णा, २. केन्द्र, ३. पवित्र, ४. भान, अनुभूति, ५. अत्याचारका, ६. माथेपर, ७. मुसकान, ८. फ़क़ीरी, ९. नावको।

जब दोस्त भी जहाँमें निभायें न दोस्ती
दुश्मनसे फिर हमें गिल-ए-इन्तिक़ाम[1] क्या ?

जुम्बिशे-लब[2] ख़िलाफ़े-आदत है
हाले-दिल क्यों करूँ बयाँ प्यारे ?
तू मेरी बात रद न होने दे
तुझे तौफ़ीक़[3] यह कहाँ प्यारे ?

पूजती है इन्हें माबूद समझकर दुनिया
आदमीसे तो 'मुनव्वर' कहीं पत्थर अच्छे

बिखेरता है जो औरोंकी राहमें काँटे
वह हात ज़ख़्म-रसीदा ज़रूर होता है

करवटोंके बग़ैर चैन नहीं
इक अजब चीज़ ज़िन्दगी भी है

ना मुकम्मल है अभी दिलकी तड़प
मुझको हर सदमा उठाने दीजिए
यह इनायत आपके बसकी नहीं
मुझको ख़ुद क़िस्मत बनाने दीजिए

---

१. बदलेकी भावनाकी क्या शिकायत, २. होट हिलाना, ३. साहस, पात्रता।

ख़ुदाके नामपर करते हैं सब कुछ
गुनहगारोंका तक़वा[१] दीदनी[२] है

ग़मे-नाकामि-ए-हयात[३] सही
देनेवालेने कुछ दिया तो है

बादए-नाब[४] था कि पानी था
अभी ज़ाहिदने कुछ पिया तो है

जो चुप रहते तो यह सूरत न होती
बिगाड़ा काम सारा गुफ़्तगूने

ज़ाब्तेसे सवाब[५] क्या होता ?
क़ाएदेसे गुनाह भी न हुआ

मेरे हक़में हुआ अच्छा मेरा हदसे गुज़र जाना
ख़ुदाई हात आई, तर्क जब कर दी ख़ुदी मैंने

फ़ज़ूल पाँव थकानेसे फ़ाएदा क्या है ?
अगर है शौक़े-बयाबाँ तो घरमें पैदाकर

जिन सवेरोंसे मिले सुबहे-मुहब्बतका[६] पयाम[७]
उन सवेरोंको किसीके ख़ूँसे क्यों नहलाइए ?

---

१. इन्द्रिय-निग्रह, सदाचार, २. देखने योग्य, ३. ज़िन्दगीकी असफलताका दुःख, ४. शराब, ५. पुण्य, ६. प्रेमरूपी प्रातःकाल, ७. सन्देश।

सुलूके-बर्क़के क़ुर्बान आशियाँ वाले
तबाह करके भी शोलोंने रोशनी दी है

हो जो हासिल उठाके ग़म लाखों
हाय वह भी ख़ुशी नहीं अपनी

क़फ़समें गुफ़्तगू यह सुनके दिलका ख़ून होता है
न छेड़ो बाज़ुओंके तज़किरे, परवाज़की[१] बातें

ख़ुदाकी शान! बताते हैं तीरा-दिल मुझको
वही चिराग़ जो लेते थे रोशनी मुझसे

न जाने किसलिए दोनोंका साथ लाज़िम था
ख़ुशी भी हो गई रुख़सत जहाँ मलाल गया

दिलकशीका बदल गया मेयार[२]
अब तो काँटा हसीं है, फूल नहीं

[२० फरवरी १९५८ ई०]

---

१. उड़ानकी, २. दृष्टिकोण।

अम्न लखनवी

मुंशी गोपीनाथ 'अम्न' १८९९ ई० में लखनऊमें उत्पन्न हुए। १९१६ ई०में आप मैट्रिक पास किया। उसी स्कूलमें प्रसिद्ध उस्ताद 'अज़ीज़' उर्दू-शिक्षक थे। उनके संसर्गमें रहते हुए आपको भी शाइरीका शौक़ हो गया। मैट्रिक करनेके बाद 'अम्न' म्यूनिसिपल कमेटीमें मुलाज़िम हो गये। वहाँ रहते हुए आपने १९२० ई० में मुख्तारीकी परीक्षा भी दी। १९२० से कांग्रेस-आन्दोलनमें आप भाग लेने लगे और आपने पहले-पहल १९२०में ही लखनऊके एक कांग्रेसी जल्सेमें अपनी एक नज़्म सुनाई। स्कूल छोड़नेके बाद आप बैजनाथ 'फ़िगार'से इस्लाह लेने लगे जो कि 'आतिश' स्कूलके स्नातक थे।

१९२४में आपने मुख्तारगरीकी प्रैक्टिस भी की। १९३० और ३२में आप जेल गये और वहाँसे आकर दिल्लीके दैनिक उर्दू-पत्र 'तेज'में सम्पादकीय विभागमें कार्य करने लगे। वहाँ तक़रीबन १५ वर्षतक रहे। १९४२के आन्दोलनमें डेढ़ वर्षतक नज़र-बन्द रहे। १९४८से दिल्ली प्रान्तीय सरकारके प्रेस-ऑफ़ीसरके उच्च पदपर आसीन रहे। फिर शिक्षा-मंत्री रहे।

अम्न साहब खद्दरपोश, सरलस्वभावी और सीधे-सादे हैं। गान्धीवादी विचारोंके हैं। बीसों मुशाअरोंमें हमने उन्हें सुना है। तरन्नुमसे पढ़ते हैं।

आपका १९५०में प्रकाशित २२४ पृष्ठका 'कारवाने-मंज़िल' जो कि आपने अपने दस्ते-मुबारकसे हमें भेंट किया, हमारे सामने है। इसमें आपकी ७३ नज़्में और ग़ज़लें है। प्रायः शाइरोंके दीवान (कलामके संकलन) ईश्वर-स्तुतिसे प्रारम्भ होते है। देशभक्त अम्न साहब अपनी

पुस्तकका उद्‌घाटन उन अज्ञात शहीदोंकी स्मृतिसे करते है, जो देशके लिए मिट गये, और इतिहाससे भी सदैवको ओझल हो गये। एक वे पवित्र आत्माएँ थीं, जो देश-निर्माणमें अपनी हड्डियाँ और ख़ूनका खाद डाल गई और कुछ ऐसे भी है, जो दो-तीन मासका बन्दी-जीवन व्यतीत करनेके उपलक्षमें न जाने कितने जुलूस निकलवा चुके और अपने गलोमें हार डलवानेकी लालसामें न जाने कितने उद्यान वीरान करवा चुके और न जाने कबतक उनका यह ऋण पठानके कर्ज़के समान जनतापर लदा रहेगा ?

गुमनाम शहीद [१९४७ ई०]

–१३ मैं-से ४–

तेरे मरने पै कोई मातमी जल्सा न हुआ
जान दी ऐसी ख़मोशीसे, तमाशा न हुआ
क़सरे-सोराजका[1], जो आज हुआ है तामीर[2]
उसकी चोटी पै नुमायाँ[3] नहीं तेरी तसवीर
हड्डियाँ तेरी मगर नींवमें इसकी हैं निहाँ[4]
ज़र्रा बुनियादमें जो हो नज़र आता कहाँ ?
तूने तारीख़ बना डाली है ख़ामोशीसे
कौन वाक़िफ़ है मगर तेरी वफ़ा-कोशीसे ?
आलमे - ग़ैबसे मंजूर हो शाइरका-सलाम

बहार फिर भी बहार है

स्वराज्य मिलनेपर अधिकाश शाइरोंने उसे झूठी आज़ादी, पूँजीपतियोंकी आज़ादी, धोका-फ़रेब वग़ैरह नामोंसे पुकारा और उसके खिलाफ़ काफ़ी लिखा। ऐसे ही शाइरोंको सम्बोधन करते हुए आप फ़र्माते है—

१. स्वराज्य-भवन, २. निर्माण, ३. स्थापित, ४. छिपी हुई।

गुलोंकी कसरत हो, या कमी हो, बहार फिर भी बहार है
कली हो चुप या चटक रही हो, बहार फिर भी बहार है
तुम्हें शऊरे-नज़र नहीं है, बहारको हेच कहने वालो !
घटा घिरी हो कि चाँदनी हो, बहार फिर भी बहार है
तयूरकी[१] नग़्मा-संजियाँ[२] हैं, कहीं है कू-कू, कहीं है पी-पी
अगर ख़रोशे-ज़ग़न[३] कभी हो, बहार फिर भी बहार है
हवामें तुन्दी[४] भी हो अगर कुछ, उसे नमूका पयाम[५] समझो
जो चन्द पत्तोंमें बरहमी हो, बहार फिर भी बहार है

आज़ादीके चिराग़

न जाने कितना रक्त उँडेलनेपर जो स्वराज्य-दीप प्रज्वलित हुआ है, वह अब प्रज्वलित ही रहे। आँधी तूफ़ानोंसे उसे बचाना हर भारतीयका परम कर्तव्य है—

चिराग़ जल तो गये हैं, यह बुझ न जायें कहीं
हवाएँ तुन्द[६] है, हर लौमें थर-थराहट है
यह लौ तो क्या है, लरज़ता है मेरा दिल ऐ दोस्त !
कि लरज़ा-ख़ेज़ फ़ज़ाओंकी[७] सनसनाहट है

चिराग़ जल तो गये हैं, नज़र न लग जाये
नज़र भी उनकी कि जिनके यहाँ अँधेरा है
निगाहे - बद़से बचाना है इन चिराग़ोंको
अभी है पिछला पहर दूर अभी सवेरा है

---

१. पत्तीकी, २. संगीत, ३. कौओंका शोर, ४. गरम हवाकी लहर, ५. वर्षा आनेका लक्षण, ६. गरम, ७. कँपा देनेवाले मौसमकी।

चिराग़ जल तो गये हैं, मगर शरीर इत्फ़ाल[1]
उलट न दें कहीं जलते हुए चिराग़ोंको
सलामती जो है मंज़ूर इन चिराग़ोंकी
करो दुरुस्त इन इत्फ़ालके दिमाग़ोंको

चिराग़ जल तो गये, हाँ चिराग़ जल तो गये
मज़ा तो तब है अँधेरा न हो चिराग़ तले
चिराग़ बामपै[2] हों, फ़र्शो-आस्माँपै[3] चिराग़
बुलन्दो-पस्तमें[4] सब कह उठें "चिराग़ जलें"

सन् १९४२ की तहरीक

सन् ४२ की क्रान्ति क्यो असफल रही, इसका कारण अम्न साहब बतलाते हुए फ़र्माते है—

क़दम बढ़ाके तुम चले, मगर यह इक कसर रही
क़दम ज़रा मिले नहीं
अगर क़दम मिले रहें तो चाहे सुस्त-रौ[5] भी हों
रसाई[6] होगी एक दिन

जंग

–८ में-से ४–

युद्ध, मानव सभ्यताके लिए अभिशाप है। फिर भी कुछ देश दिन-रात मानव-संहारके उपाय सोचते रहते है—

---

१. शरारती लड़के, २. ऊपरी मंज़िलोपर, ३. पृथ्वी-आकाशपर, ४. उत्थान-पतनमें, ५. धीमी चाल, ६. पहुँच।

फ़ज़ाए-आस्माँसे[१] बे-गुनह बन्दोंपै बमबारी
फ़ना-कोशीकी[२] ख़ातिर नस्ले-इन्सानीकी तैयारी
यह इन्सानोंके अन्दर जज़्बए-वहशत[३] अरे तौबा !
दरिन्दोंकी-सी[४] इन्सानोंकी यह ख़सलत अरे तौबा !
बहाना ख़ूने-इन्साँ दौरे-मौजूदाका इक फ़न है
तबाही हाँ तबाही मशरिको-मग़रिबमें[५] क़दग़न[६] है
वही साइंस, जिसपर अहले-मग़रिब नाज़[७] करते थे
वही तहज़ीबे-ख़ूनी, मग़रिबी दम जिसका भरते थे

पिंजरेके पंछीसे

–६ बन्दमें-से ३–

द्वितीय महासमरमें अंग्रेज़-जर्मन-युद्धमें अंग्रेजोंकी सहायता न की जाय, इसी बातको चन्द कितोंमें यूँ बयान किया है—

बरबादिए-बुस्ताँके हरइक सिम्त है आसार
गुलशनमें है सैयाद बहम बरसरे-पैकार ॥
आपसके यह झगड़े हैं, नहीं तुझको सरोकार ।
ऐ मुर्ग़े-गिरफ़्तार ! ख़बरदार ! ख़बरदार !!

सैयादोंके झगड़ोंसे तुझे काम नहीं है ।
क्या मुर्ग़े-गिरफ़्तार तेरा नाम नहीं है ?

१. आस्मानसे, २. युद्ध-लिप्साके लिए, ३. पागलपनके विचार, ४. ख़ूँख्वार जानवरों-जैसी, ५. पूर्वी-पश्चिमीय देशोंमें, ६. वर्जित है, ७. पाश्चात्य लोगोंको अभिमान था ।

गुलशनमें लगे आग तू कर फ़िक्र न जिनहार।
ऐ मुर्ग़-गिरफ़्तार ! ख़बरदार ! ख़बरदार !!

....

सैयादको लुट जानेका गो अपने खतर है।
फिर भी तेरे पिंजरेपै वही सख्त नज़र है॥
गुलशनमें जो होना है, वोह हो लेने दे इकबार।
ऐ मुर्ग़-गिरफ़्तार ! ख़बरदार ! ख़बरदार !!

....

किसान

–१० में से ५–

जो खाली बैठे-बैठे तोंदपर हाथ फेरते रहते है, डकार और जम्हाइयाँ लेते रहते है, झूठे आत्म-सन्तोषके लिए मन्दिरों-मस्जिदोंमें जाते है; उनसे अधिक श्रेष्ठ अन्नदाता किसान है—

वह जा रहा है अँधेरेमें हल उठाये हुए
निगाह नीची किये और क़दम बढ़ाये हुए
जहाँको फूँक सके उसकी एक चिंगारी
उस आगको तहे-दामाने-दिल दबाये हुए
ख़याल है कि वोह बच्चे हैं जागने वाले
जो भूखे पेट है कल शामसे सुलाये हुए
फटी ही धोती है तनपर फटा-सा कुर्ता है
उधड़ चले है जो पैबन्द थे लगाये हुए
मेरी नज़रमें यह उनसे बहुत बुलन्द है 'अम्न'!
जो लोग दैरो-हरममें हैं सर झुकाये हुए

दिले-मायूससे खिताब

–१६ में-से ४–

निराश महानुभावोंको सम्बोधते हुए फ़र्माते हैं—

तू पहले जौहरे-क़ाबिल[1] तो ख़ुदमें पैदाकर
न हो जो फिर निगहे-इल्तिफ़ात[2] क्या मानी ?
हर-एक तारेमें शम्सो-क़मरकी रूह[3] तो फूँक
पलट न जाय अँधेरी यह रात क्या मानी ?
तू सहने-बाग़में दामन बचाके चलता है
न उलझनोंमें पड़े तेरी ज़ात क्या मानी ?
वह चाल चलके दिखा ऐ अमीने-मुस्तक़बिल[4] !
हो तेरा नक़्शे - क़दम और जबीने-मुस्तक़बिल[5]

ज़िन्दगी

–९ में-से ४–

उमीदोंमें[6] ही जाने-ज़िन्दगी है
तमन्ना पासबाने - ज़िन्दगी[7] है
रहे जोशे-अमल दिलमें मुसलसल[8]
यही रूहे - रवाने[9] - ज़िन्दगी है
नहीं बाक़ी जो सरमें कोई सौदा
तो फिर क्या ख़ाक शाने-ज़िन्दगी है ?
वह ज़िन्दा क्या है जिसका बुझ गया दिल
सरासर नौहा-ख़्वाने - ज़िन्दगी[10] है

---

१. योग्यता, २. कृपादृष्टि, ३. सूर्य-चन्द्रका जीवन, ४. भविष्यके अधिकारी, ५. भविष्यका मस्तक, ६. आशापर पृथ्वी निर्भर है, ७. जीवनकी रक्षक, ८. लगातार, ९. प्राण डालनेवाली, १०. ज़िन्दगीका मातम ।

इन्सानियत

–१५ में-से ६–

मानव और पशुओंमें अन्तर क्या रह गया है—

यह कहते हैं कि सब मखलूक़से[1] इन्सान अफ़ज़ल[2] है
न हो जब जौहरे-ज़ाती तो फिर यह दावा मोहमल[3] है
जो ज़ुल्म इन्सान करता है, वह हैवाँ कर नहीं सकता
वह कौन ऐसी जफ़ा है जोकि इन्साँ कर नहीं सकता
जिसे हम इल्म समझे, इर्तिक़ाए - बरबरीयत[4] है
कि एटम बम बनाना आज शाने - आदमीयत है
घरौन्दे हैं हुदूदे - रंगो - नस्लो - क़ौमो - मज़हबके
हुए दिल-तंग और आदर्श नीचे हो गये सबके
बुतोंके नामपर लड़ना, ख़ुदाके नामपर लड़ना
ग़रज़ हर कामपर, हर नामपर, हर गामपर लड़ना
गिरे इन्सान तो हैवानकी हदसे भी गिर जाये
बने शैताने - सानी[5] आदमीयतसे जो फिर जाये

है किसीको ग़ुरूर ताक़तपर
कोई दौलतको ज़िन्दगी समझा
आदमी-आदमी वही है, मगर
जो मुहब्बतको ज़िन्दगी समझा

---

१. अमानवोंसे, २. श्रेष्ठ, ३. व्यर्थ ४. पशुता है, ५. दूसरा शैतान ।

गान्धीको सलाम

– ११ में-से ३ –

राष्ट्र-पिता बापूके प्रति अम्न साहबके मनोभाव—

वह प्रेमरसका जाम था
कि मोहन उसका नाम था
ब - ज़ाते - ख़ुद पयाम था
उसे मेरा सलाम है

बर हना-तन फ़क़ीर था
वह क़ौमका अमीर था
जो अपनी ख़ुद नज़ीर था
उसे मेरा सलाम है

वह रह-नुमाए - बे - बदल
कि लाग़रीमें था सबल
फ़ना न कर सकी अजल
उसे मेरा सलाम है

ग़ज़लोंके चन्द शेर

कहीं ज़ब्ते-ग़म राएगाँ हो न जाये
जो आँसू थमा है रवाँ हो न जाये!
बहम मशविरे होते हैं रहज़नोंमें—
"कहीं मुत्तहिद कारवाँ हो न जाये!"

यह फूलोंका मौसम, यह फ़स्ले - बहाराँ
ग़मे - आशियाँ फिर जवाँ हो न जाये ?

असीराने-क़फ़सकी आप बीती पूछते क्या हो ?
यहाँ ऐ 'अम्न' क़ज़्ज़ाक़ोंसे बद्तर पासबाँ देखे ।।

उम्मीदें तो वाबस्ता हैं अब्रे-तरसे
जो बरसे तो बरसे न बरसे न बरसे
ज़बानो-दहनसे जो खुलते नहीं हैं
वह खुल जाते हैं राज़ अक्सर नज़रसे

कहा शेख़से एक पीरे - मुग़ाँ ने—
कि "हर-इकको देखो उसीकी नज़रसे" ।
यह है 'अम्न' इन्साँकी पस्ती-सी-पस्ती ।
गुनहसे बचा भी तो दोज़ख़के डरसे ।।

कहीं इसीमें न मुज़मिर हो ज़िन्दगीए - चमन
जो बर्क़ कौदती है मेरे आशियाँ के लिए

मेरे ख़ालिक़ ! तेरी मख़लूक़ भूकी मरती जाती है
कहे जाऊँ तुझे परिवर्दिगारे - दो जहाँ कबतक ?

कुछ अपना मर्तबा जानो, कुछ अपनी क़द्र पहचानो ।
जमींपर बसनेवालो ! शिकवए-हफ़्त-आस्माँ कबतक ?

किसीको दहरमें अंजाम-बीं नज़र न मिले
इसीमें ख़ैर है आख़िरकी कुछ ख़बर न मिले

सुना है, उनसे मुलाक़ात होगी महशरमें ।
है एक और क़यामत वहाँ अगर न मिले ॥
कहीं फ़रिश्ते मिले, और कहीं मिले शैतान ।
हो जिनमें शान तवाज़ुनकी वोह बशर न मिले ॥

क़फ़समें जाके मिलना है पुराने हम - सफ़ीरोंसे
बिनाए-आशियाँ रखनेकी फ़ुर्सत ही कहाँ मुझको ?

बेगाने जो शुरूसे हैं उनका ज़िक्र क्या ?
अपने भी ग़ैर हो गये इसका मलाल है ॥

ज़िन्दगी बे-ख़तर पसन्द नहीं ।
पुर-सकूँ रहगुज़र पसन्द नहीं ॥

कोई शादमाँ, कोई अन्दोहगीं है ।
सुकूँकी अभी कोई सूरत नहीं है ।
दिमाग़ आस्माँपर ज़मींपर जबीं है ।
इबादत यह कोई इबादत नहीं है ॥

[३१ मार्च १९५८ ई०]

यह मज़मून पहिले कुल तीन पृष्ठका शेरो-सुख़नके पाँचवें भागमें छापा था । द्वितीय संस्करणमें वहाँसे निकालकर अब पुनः नये सिरेसे लिखकर यहाँ दिया जा रहा है, क्योंकि 'अम्न' इसी युगके शाइर हैं ।

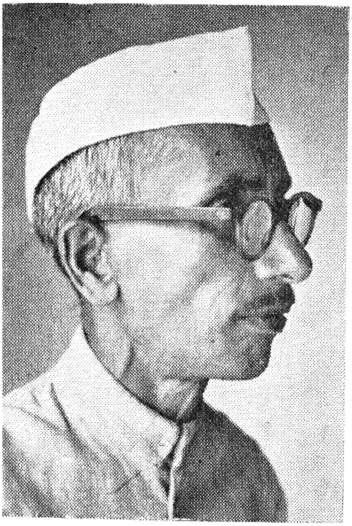

श्री गोपीनाथ अम्न

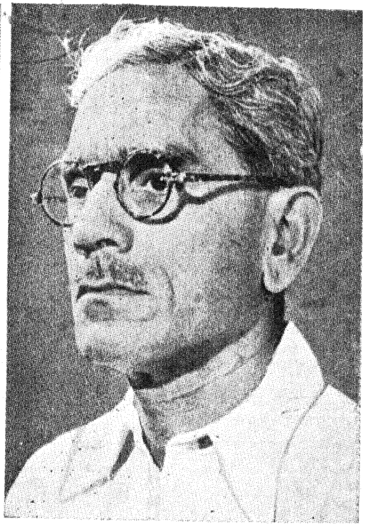

पं० हरीचन्द्र अख़्तर

श्री हफ़ीज़ जालन्धरी

पं० हरीचन्द अख़्तर

पं० हरीचन्द 'अख़्तर'को शाइरी न तो विरसेमें मिली, न उनके चारों तरफ़ वातावरण ही शाइराना था। न उनके परिवारमें कोई पढ़ा-लिखा था, न उनके गाँवमें। फिर भी वे बहुत बड़े अदीब (विद्वान्, साहित्यिक) और शाइर हुए। इसे प्रकृतिका चमत्कार ही कहना चाहिए कि शाइरी और अदबके लिए रेगिस्तान 'साहबा' जैसा गाँव भी पं० हरीचन्दके काव्य-कुसुमसे सुरभित हो उठा।

गाँवके किसी व्यक्तिको यह स्वप्नमें भी आभास न मिला होगा कि हमारे गाँवका हरीचन्द किसी रोज़ आस्माने-शाइरीमें चन्द्रके समान पूरी आबो-ताबके साथ चमकेगा और चाँदनी बखेरकर देखते-देखते ओझल हो जायगा। चन्द्रमा तो ओझल होकर भी दृष्टिगोचर होता रहता है, परन्तु 'साहबा' गाँवके स्वाभिमानी और बातके धनी हरीचन्दको दुरंगी पसन्द नहीं। वे गये तो अब कदापि वापिस न आयेंगे। सतयुगी हरिश्चन्द्रकी तरह यह कलिजुगी हरीचन्द भी सदैव अपनी बातका धनी रहा, जो टेक इख़्तियार की, उसे जानपर खेलकर भी जीवन पर्यन्त निभाया।

इस दुरंगी और स्वार्थी दुनियामें पण्डितजी आकर करें भी क्या? उन्हें यहाँ दिलचस्पी भी क्या रह गई थी? जवान लड़का जब उन्हें छोड़कर चला गया तो वे क्यों न दुनियाको छोड़कर चले जाते? दुखो और व्यथासे परिपूर्ण संसारमें क़हक़हे लगाते हुए अपने ज़ख़्मे-दिलको कबतक छिपाये रखते? ज़ख़्मे-दिल होता तो शायद छिपाया भी जाता, रफ़ू भी किया जाता, परन्तु निरन्तर रिसता हुआ असाध्य नासूर कैसे रफ़ू होता, कबतक छुपता?

'मुसहफ़ी'! हम तो समझे थे कि होगा कोई ज़ख़्म।
तेरे दिलमें तो बहुत काम रफ़ूका निकला॥

पं० हरीचन्द 'अख्तर' अदीब और शाइर न हुए होते, तो भी दुनिया-ए-शाइरीमें कोई खास कमी महसूस न होती। क्योंकि उन्होंने जितना अधिक गद्य-पद्य लिखा, उसका शतांश भी जनताके सामने नहीं आया। एक तो उनका मौजी स्वभाव ही मुद्रणकी झंझटोंसे दूर रहना चाहता था। दूसरे किन्हीं शाइरोंने अपने संकलनोंके लिए प्रस्तावनाएँ और सम्पादकोंने अपने पत्र-पत्रिकाओंके लिए—कहानियाँ, आलोचनाएँ, व्यंग्य लेख, ग़ज़लें-नज़्में किसी तरह उनसे हस्तगत करके मुद्रित भी कीं, तो उन्हें कभी सँभाल कर नहीं रखा। इस बेपरवाहीका परिणाम यह हुआ कि उनका विस्तृत गद्य-पद्य साहित्य पुस्तक रूपमें उपलब्ध नहीं। अब सुना है कि उनके हिन्दोस्तानी और पाकिस्तानी मित्र पुस्तक रूपमें प्रकाशनकी योजना बना रहे है। शुक्र है कि उनकी मृत्युके बाद ही सही, उनका अमूल्य साहित्य उपलब्ध हो सकेगा।

पं० हरीचन्द 'अख्तर' शाइर और अदीब न हुए होते तो कोई खास कमी महसूस न होती, जैसा कि ऊपर अर्ज़ किया जा चुका है। लेकिन वे पैदा ही न हुए होते तो दुनिया एक शरीफ़ इन्सान और सच्चे दोस्त-की कमी ज़रूर महसूस करती।

अड़ी भीड़में इष्ट-मित्रोंके काम आना, अपना घर जलाकर दूसरोंके यहाँ रोशनी करना पण्डितजीका स्वभाव था। दूसरोंकी मामूली-मामूली परेशानियोंसे बेचैन हो जाना और अपने पहाड़ जैसे ग़मोंको भी चुपचाप सह जाना उनका मामूल था। वे अपने क़हक़होंमें सबको शामिल करते थे, मगर आँसू चुपचाप पी लिया करते थे। यहाँ तक कि पत्नी और बच्चोंको भी हृदयकी व्यथाओंका आभास नहीं होने देते थे। यहाँ तक कि कभी रुग्ण शय्यापर पड़े हुए मुँहसे कराहना निकलनेको हुई और तभी कमरे में पत्नी या बच्चोंके आनेका आभास मिला तो उस कराहना को हलक़में ही घोटकर रह जाते थे। अपनी इस वज़अदारीको उन्होंने जीवन पर्यन्त निभाया। यहाँ तक कि बीमारीमें एक आँखकी ज्योति क़तई

जाती रही थीं, परन्तु बीवी-बच्चोंपर इसलिए प्रकट नहीं किया कि उनके हृदयको ठेस पहुँचेगी। लाहौरमें एक मित्रके यहाँ ठहरे हुए थे। वहाँ माँ के मरनेका तार पहुँचा तो उन्हे केवल बीमारीकी बात कहकर चले आये ताकि उन्हे कोई परेशानी न हो। जीवन पर्यन्त इष्ट-मित्रोंके काम आते रहे, परन्तु अपने लिए कभी किसीको अवसर नहीं दिया। उनकी दोस्त-नवाजीका हाल उनके अनन्य मित्र 'अर्श' मलसियानी साहबकी ज़बानी सुनिए—

"तमाम उम्र दोस्तोंकी खिदमत करते रहे ख़ुद तंग दस्त रहे, लेकिन दोस्तोंकी तंगदस्ती देख न सकते थे। दफ्तरसे घर आते-आते आधी तनख्वाह बाँट देते। कर्ज़ लेकर अहबाबकी मुश्किल कुशाई (इष्ट-मित्रोंकी समस्याएँ हल) करते।......

"एक दिन ख़िलाफ़ तवक्कुअ़ (आशाके विपरीत, असमय) मुझसे मिलनेके लिए आये। मैंने कहा 'कहिए क्या इरशाद (आदेश) है' ? कहने लगे—'सौ रुपये लाओ, फ़ौरी-सी ज़रूरत आ पड़ी है।' मैंने तज़बुज़बका इज़हार (सन्देह मिश्रित फ़िक्र प्रकट) किया। सौ रुपये देनेसे नहीं, बल्कि इस खयालसे कि यह सौ रुपये भी ख़ैरात होनेवाले है। मैंने कहा—'पंडितजी ! मुझे और भाभीको यही शिकायत है कि आखिर आप करते क्या है ? बच्चोंके लुक़मे (ग्रास) छीनकर दोस्तोंको देते है, यह वाजिब (उचित) नहीं।'

"उन्हे यह तनकीद (आलोचना) अच्छी नहीं लगी। ज़रा आज़ुर्दह ख़ातिर (अप्रसन्न) होकर कहने लगे—'तुम दोनो मुझसे जवाब तलब नहीं कर सकते। मेरी बद-एमाली (बदचलनी) देखो तो गर्दन ज़दनी क़रार दे सकते (गर्दन काट सकते) हो। इतना कहा और जेबसे सौ-सौ रुपयेके पाँच नोट निकालकर कहने लगे कि—'बस एक नोटका इज़ाफ़ा (वृद्धि) और कर दो। एक दोस्तकी जान आज छ:हसौमें बचती है।' मैं देखता रह गया। दिल ही दिलमें उनके क़दमोंमें सर झुकाया और

सौ रुपये उनकी नज़र किये। ख़ुश-ख़ुश गये और कहते गये कि 'बहुत जल्द यह सौ रुपये वापिस कर दूँगा।' चुनाचे ऐसा ही हुआ, यह अजीमुल मर्त्तबत (उच्च आदर्शोंका प्रतीक, बुलन्दमर्त्तबेका) इन्सान कर्ज़ लेकर दोस्तोंकी मदद करता था।

"राशनिंगके ज़मानेमें कपड़ा मिलता नहीं था। एक अक़ीदतमन्द (श्रद्धालु) सफ़ेद टूलका थान लाया और पण्डितजीको दे गया। वह थान दफ्तरमें मेज़पर पड़ा था कि उनके दोस्त, मातहत, हत्ते कि चपरासी तक आये और एक-एक दो-दो क़मीज़का कपड़ा उनमे ले गये। उनके लिए एक धज्जी भी ज़ख्म पर पट्टी बाँधने तकको न बची। तुर्रा यह कि उन्हे यह थान कीमतन मिला था और माले-मुफ्तकी हैसियतसे तक़सीम हुआ। ऐसे सैकड़ों क़िस्से है, किस-किसको बयान करूँ ?"[1]

१९३४ ई० के लगभग 'हफ़ीज़' जालन्धरीकी ग़ज़लों, नज़्मो एवं गीतोंका संकलन 'सोजो-साज़' नज़रोंसे गुज़रा तो प्रस्तावना-लेखककी हैसियतसे पं० हरीचन्द अख्तरका नाम देखकर कौतूहल-सा हुआ। हफ़ीज़-जैसे ख्यातिप्राप्त शाइरके ग्रन्थका प्रस्तावना-लेखक एक हिन्दू ! ज़रूर कोई बड़ा अदीब होगा, अन्यथा यह अवसर उसे कभी प्राप्त न होता। प्रस्तावना पढ़ी तो जहाँ एक तरफ़ मन खिल उठा, वहाँ दूसरी तरफ़ अपनी अज्ञानतापर तरस भी आया कि अभीतक ऐसे अदीबके सम्बन्धमे कोई जानकारी नहीं थी। इसके बाद निरन्तर प्रयास करता रहा कि उनके गद्य-पद्य पढ़नेका अवसर मिले; किन्तु दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर आदि शहरोंमे भी उनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ। साल-दो सालमें कभी किसी पत्र-पत्रिकामें उनकी ग़ज़ल या लेख नज़र पडते तो उन्हें चावसे पढ़ता। जब मालूम हुआ कि भारत-विभाजनके बाद दिल्लीमे ही रहने लगे है तो, नियाज़ हासिल करनेका

१. आजकल उर्दू मई १९५८ पृ० ६–७।

शौक़ बढ़ा। हज़रत 'अर्श' मलसियानी साहबसे पता मालूम करके दौलत-खानेपर हाज़िर हुआ, मगर उस वक़्त आप बाहर तशरीफ़ ले गये थे। सौभाग्यसे हज़रत जगन्नाथ साहब 'आज़ाद' ने ३० दिसम्बर १९५६ को मुझे दोपहरके खाने पर निमंत्रित किया। कुछ उर्दू-अदीबोंसे परिचय करानेके लिए ही आज़ाद साहबने यह भोज-व्यवस्था की थी।

आज़ाद साहबने पं० हरीचन्दसे परिचय कराया तो मैं क्षण भरको आश्चर्यचकित-सा हो गया। क्या यही सचमुच हरीचन्द अख़्तर है? मुसकराते हुए बहुत मुहब्बतो-खुलूससे पेश आये। अपने पास बिठाकर बग़ैर किसी तकल्लुफ़के खुले दिलसे बातें करते रहे। यह पलभरको भी महसूस न होने दिया कि मै किसी बड़े अदीबसे हमकलाम ही नहीं, उससे सटा हुआ भी बैठा हुआ हूँ। वे बहुत जल्दीमें थे। आते ही बोले—"खाना नहीं खाऊँगा मुझे बहुत जल्द एक दूसरी जगह जाना है। आप घर पर तशरीफ़ लाये और मै न मिल सका, इससे मुझे बहुत मलाल हुआ। इस वक्त तो मै सिर्फ़ मआज़रत (क्षमायाचना) के लिए आया हूँ।" मै हैरान कि यह तंज और मज़ाहका बादशाह कितनी सरलता और आत्मीयतासे पेश आ रहा है।

खुली मोहरीका खद्दरका पायजामा, बन्द गलेका पट्टूका कोट, चश्मा लगाये, नंगे सर, मेरे तसव्वुरसे क़तई मुख्तलिफ़। मेरा ख्याल था 'अख्तर' साहब पंजाबी है, साथ ही एम. ए.। जरूर साहबी ठाठमें रहते होगे। क्योंकि पंजाबका तो कुली भी अंग्रेज़ बननेके प्रयासमें रहता है।

उनके दो-चार व्यंग्यात्मक लेख पढ़नेसे मुझे आशंका थी कि सम्भवतः वार्तालापमें झेंपानेकी कोशिश करेंगे। कुछ उखड़ी-उखड़ी, बेपर्वाह बातचीत होगी, तुर्श जुमले होंगे। मगर मेरी आशका निर्मूल निकली। समीप बैठे हुए मुझे यूँ महसूस हो रहा था, जैसे अपने बड़े भाईके पास बैठे हुए पारिवारिक बातें सुन रहा हूँ।

उनका सुलझा हुआ मज़ाक़, लतीफ़ जुमले, भुलाये नहीं भूलते। हिन्दी-उर्दूकी क्लिष्टताके प्रसंगपर यह लतीफ़ा सुनाया—

"एक छोटे-से गाँवसे दूसरे गाँवमें भंगिन आई तो मौलवी साहबने पूछा—'अरी हो हलालखोरी! अरी ओ हलालखोरी! तेरे कुर्यःमें भी तक़ातार-बाराने-रहमत हुआ है या नहीं?'

भंगिनने जवाब दिया—'मौलवी साहब! हम कुछ नहीं समझे, इन्सानोंकी तरह बात कीजिए।'

मौलवी साहब तमक कर बोले—'तू तफ़हीम करे या न करे, तुझ ज़र्रए-बे मक़दूरकी ख़ातिर हम अपना शआ़रे-तकल्लुम तो मुनक़लब करनेसे रहे।"

सुखनफ़हमीके प्रसंगपर फ़र्माया—"अमुक शाइर[1] दस-पाँच अदीबोंमें बैठे हुए अपना कलाम सुना रहे थे। एक हज़रत जो वहाँ बहुत बेदिली-से बैठे हुए थे, और कलामकी तरफ़ तवज्जह नहीं फ़र्मा रहे थे। उनके एक शेरपर यकायक दाद दे बैठे। बस फिर क्या था, कलाम पढ़ना छोड़कर उन्होंने जेबसे पेन निकालकर उस शेरको काट दिया। सबब पूछनेपर फ़र्माया—'शेरमें कुछ-न-कुछ नुक़्स होगा, वर्ना इनकी समझमें न आता'। दाद देनेवालेपर घड़ों पानी पड़ गया।"

न जाने स्नानका ज़िक्र कैसे आया तो फ़र्माया—"अरे साहब! हिन्दुओं-का क्या नहाना? सोमको नहायेंगे, फिर कहीं जाकर मंगलको नहायेंगे, फिर बुधको बारी आयेगी! फिर बृहस्पत, शुक्र, शनि, रविवारको नहायेंगे। यह भी कोई नहानेमें नहाना है। नहाना मुसलमानोंका। हर जुम्मेके जुम्मे, हर जुम्मेके जुम्मे, हर जुम्मेके जुम्मे।

---

१ हज़रत 'अख़्तर' साहबने शाइरका नाम बताया था, मगर मुझे स्मरण नहीं रहा।

'हर जुम्मेके जुम्मे' कहते हुए वे इस तरह इतनी जल्दी-जल्दी चुटकी बजाते जा रहे थे, जिससे प्रतीत होता था कि वे हर घडी नहाते ही रहते है और हिन्दू है कि कभी-कभी नहाते है। लतीफ़ा क्या था, हँसीका फ़व्वारा था।

मेरे निवेदन पर अपना खुदपसन्दीदा कलाम और जीवन-परिचय लिख भेजनेका वादा भी किया। लेकिन मुझे उन जैसे नेक और सच्चे इन्सानके वादेपर विश्वास न हुआ। मैने सोचा—जो व्यक्ति अपने गद्य-पद्य-साहित्यको सुरक्षित रखनेकी पर्वाह नहीं करता, प्रकाशकोंके बार-बार अनुरोध पर भी जो अपनी एक कृति भी मुद्रण-योग्य न बनाये, वह मुझे अपना कलाम कहाँसे और कैसे चयन करके भेजेगा? अतः 'आजकल' उर्दूके सम्पादक पं० बालमुकुन्द 'अर्श' मलसियानीने जो थोड़ा-सा कलाम किसी तरह चयन किया था, वही 'अर्श' साहबसे माँग लाया। यह किस कम्बख्तको यक़ीन था कि अख्तर साहबका परिचय एवं कलाम उनके बाद छप सकेगा।

शेरो-सुखन भाग चतुर्थके द्वितीय संस्करणके लिए हज़रत 'जोश' मलसियानी साहबका परिचय पुनः नये सिरेसे लिखते हुए आपका लिखा हुआ एक उद्धरण देने लगा तो उस उद्धरणमें सर अब्दुलक़ादिरको मरहूम (जन्नतनशीं) लिखा देखकर मैं सोच रहा था कि जिस समयका यह वाक़िया है, उस समय तो सर अब्दुलक़ादिर जीवित थे। अतः उनके नामके साथ 'मरहूम' न लिखा जाय तो कैसा रहे? यही सोचते हुए आई हुई डाकमें 'रियासत' देखने लगा तो अख्तर साहबकी मृत्युकी खबर देखते ही अख़बार हाथसे छूट गया। क़ुदरतकी सितमज़रीफ़ी देखिए कि कहाँ तो मुझे एक 'मरहूम'को मरहूम लिखनेमें पसो-पेश हो रहा था, कहाँ अब उस उद्धरणके लेखकको भी मरहूम लिखना पड़ा। कई रोज़ तक फिर लिखा न गया। 'अख्तर' साहबसे सिर्फ़ एक घण्टेका परिचय

था। मगर उनकी हँसमुख छवि आँखोंके सामने घूम जाती है। कैसा आकर्षण था उनकी वाणी और व्यक्तित्वमें ?

पं० हरीचन्द 'अख़्तर'ने पंजाबके होश्यारपुर ज़िलेके साहबा गाँवमें अप्रैल १९०१ ई० में जन्म लिया। गवर्नमेण्ट हाई स्कूल जालन्धरमें पढ़ते हुए हफ़ीज जालन्धरीसे मित्रता हुई जो जीवन पर्यन्त निभी। लाहोर-से अंग्रेज़ीमें एम० ए० और फ़ारसीमें मुंशी फ़ाज़िलकी उच्च डिगरियाँ प्राप्त कीं। हाई स्कूलमें पढ़ते समय ही गद्य-पद्य लिखना प्रारम्भ कर दिया था। शुरू-शुरूमें 'शर्मा' उपनामसे लिखते थे। फिर हफ़ीज़की सम्मतिसे 'अख़्तर' तख़ल्लुस रख लिया। कालेजमें पढ़ते समय कालेज-मेगज़ीनके सम्पादक भी रहे। कालेज छोड़नेके बाद कुछ वर्ष उर्दू-पत्रोंका सम्पादन किया। 'रहनुमा' के लिए बहुत-से मज़ामीन फ़ारसीमें लिखे, फिर पत्रकारिता छोड़कर पंजाब असेम्बलीके संवाददाता-पदपर आसीन हुए। द्वितीय महायुद्धमें अंग्रेज़ी सरकारके प्रचार विभागसे सम्बन्धित रहे। युद्धोपरान्त रेडियो दिल्लीमें कार्य करते रहे। मृत्युसे २० मास पूर्व पेंशन पर थे। व्यंग्य, परिहास और हाज़िरजवाबी आपके स्वभावमें घुले-मिले थे। लाहोरमें १९२९से १९४१ ई० तक रहते हुए आपने बड़े-बड़े साहित्यक मोर्चे सर किये। 'दोज़ख़ी' छद्मनामसे आपने बहुत-सी मार्केकी नज़्में छपवाईं। लाहोरके मशहूर अख़बार 'पारस' के सम्पादकीय लेख और 'नमकदान' शीर्षकसे व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ लिखते रहे, जिनकी उर्दू-संसारमें बहुत धूम रही। ताजवर नजीबाबादी और ज़फ़र अलीखाँ—जैसे ख्यातिप्राप्त पत्रकारोंके विरुद्ध वह दन्दानशिकन जवाब दिये कि उन्हें भी आपकी क़लमका लोहा मानना पड़ा।

भारत-विभाजनके बाद दिल्ली रहने लगे, परन्तु आपके पाकिस्तानी मित्र और उर्दू-प्रेमी आपको नहीं भूले। आप अक्सर मुशाअ़रोंके अध्यक्ष चुने जाते या मंच-व्यवस्थापक बनाये जाते।

शाइरोंका परिचय, कलामपर दाद इस सलीक़ेसे देते थे कि मुशाअ़रा

दादो-तहसीनसे गूँज उठता था। साथ ही शाइराना छेड़-छाड़ और हाज़िरजवाबीके ऐसे जुमले तराशते थे कि मुशाअ़रा खिल उठता था। एक बार हज़रत 'नूह' नारवी साहबने 'रात कितनी,बात कितनी' क़ाफ़िए-रदीफ़में ग़ज़ल पढ़ते हुए अपने खास रंगका जब यह मिसरा पढ़ा—

यह दिल है, यह कलेजा, यह जिगर है

तो आपके मुँहमें बेसाख्ता मिसरा पूरा हो गया—

क़साई दे गया सौग़ात कितनी ?

मिसरेको सुनकर मुशाअ़रा खिल उठा। पं० राजनारायण अपने नामके आगे 'पट्शास्त्री' भी लिखते थे। उर्दू-अखबार निकालते थे और 'अरमान' उपनामसे ग़जल भी कहते थे। समकालीन लोगोंसे चश्मक भी रखते थे। उनकी मूँछे बहुत लम्बी थीं। अख्तर साहबने उनपर जो ग़ज़ल कही, उसका एक मिसिरा ये है—

रोटी तो किसी तौर कमा खाये मुछन्दर

जम्बूके मुशाअ़रेमें सम्मिलित होनेके लिए लाहौरके शाइरोंकी टोली रेलसे जा रही थी। 'फ़िदा' साहबने आपसे फ़र्माया—"ग़ज़ल तो कह ली है, मगर मक्ता नहीं हुआ।" ग़ज़लकी ज़मीन थी—खुदा होकर, दुआ होकर। अख्तर साहबने सुनते ही कहा—लीजिए मक्ता हाज़िर है—

मज़ा जीनेका आख़िर दिल लगानेपर ही मिलता है।
'फ़िदा' साहब किसीपर देख लेना था फ़िदा होकर॥

दुःख है कि ऐसा मुसकुराता हुआ शादाब गुल अचानक खिज़ाँकी नज़र हो गया। १५ दिसम्बर १६५७ई० को मालियर कोटलेके मुशाअ़रेमें आप तशरीफ़ ले गये थे। वापिसीपर इन्फ्लूएँजाकी लपेटमें आ गये। उसी निर्बल अवस्थामें क्रूर कालने आक्रमणका उचित अवसर पाया और १ जनवरी १९५८ की रातको आपकी आत्माको हरण कर लिया।

क्रूर कालकी सितमज़रीफ़ी देखिए कि उसने पंडितजीके परिवार और इष्ट-मित्रोंके रुदनके लिए वह नया दिन चुना, जिस रोज़ कि दुनियामें मुबारकबाद और बधाइयोंका मेह बरस रहा था।

अख्तर साहबके निधनसे भारत और पाकिस्तानके उर्दू-हलक़ेमें शोककी लहर दौड़ गई। अदीब, शाइर, अपने-पराये, इष्ट-मित्र कलेजा मसोसकर रह गये। २ जनवरीको दिल्लीमें आपका दाह-संस्कार हुआ। ६ जनवरीको पाकिस्तानके प्रसिद्ध पत्रकार और अदीब मौलाना 'सालिक'ने 'बीसवीं सदी'के सम्पादकको समवेदना-सूचक पत्रमें लिखा—

"पण्डित हरीचन्द अख्तरके इन्तकालकी ख़बर दोस्तोंपर बिजलीकी तरह गिरी। हम अभी इस सदमेके लिए तैयार न थे। पाकिस्तानके तमाम अख़बारोंमें पण्डितजीके इन्तकालकी खबर शाया हो चुकी है और अक्सर अख़बारात उनके मुताल्लिक़ नोट भी लिख चुके है। मैंने फ़ौरन एक मज़मून लिखकर 'शोरिश'को भेजा, जो उन्होंने फौरन दूसरे मज़ामीनको रोककर दूसरे ही दिन 'चट्टान'में शाया कर दिया। पाकिस्तानके पढ़े-लिखे लोग 'अख्तर'के शेफ़्ता (प्रेमी) हैं। यहाँ उनके मुताल्लिक़ बहुत-कुछ लिखा जायगा। पं० हरीचन्द 'अख्तर' निहायत खुश ज़ौक़, सुख़न फ़हम, निहायत पुख्ताकार और बा-कमाल शाइर, ज़बान और फ़न (भाषा और साहित्यिक-कला) की बारीकियोंके माहिर (दक्ष) लतीफ़ो-नफ़ीस नस्र (सुरुचिपूर्ण गद्य) लिखनेवाले और सही माअ़नेमें इंशापरदाज़ (उम्दा और चुस्त लेखक) थे। लेकिन सबसे ज्यादा कशिश और दिल फ़रेबी उनकी शख्सियतमें थी। जिसकी वजहसे दोस्त अहबाब (इष्ट-मित्र) उनसे सिर्फ़ मुहब्बत ही न रखते थे, उनपर जान छिड़कते थे। हक़ीक़त यह है कि 'अख़्तर' किसी वक्त भूलता नहीं। तीस सालके पुराने ताल्लुकात और निहायत पुरखुलूस रवाबत (स्नेह पूर्ण सम्बन्ध) की वजहसे इस नुक़साने-अज़ीम (महान् क्षति) पर कलेजा मुँहको आता है। बहर हाल अजल (मौत) के सामने किसीकी पेश

नहीं चलती। आज पण्डितजी चले गये, कल हमको भी जाना है।······ उनके बच्चों तक पाकिस्तानी दोस्तोंका रंजो-ग़म ज़रूर ही पहुँचाइए। ख़ुदा उन मुसीबतज़दोंको सब्र दे और ज़िन्दगीकी आफ़तोंको बर्दाश्त करनेकी तौफ़ीक़ अता फ़र्माए (शक्ति प्रदान करे)। पं० हरीचन्द 'अख्तर' को ईश्वर परमात्मा स्वर्गलोकमें बहतरीन जगह दे[1]।"

'हफ़ीज़' जालन्धरीने अपनी हृदयकी व्यथा इन अशआरमें उँडेली—

मैं यह समझा था कि अब ज़दसे निकल आया हूँ
मर्गे - अहबाबकी सरहदसे निकल आया हूँ
थी यह तद्बीर नया तीर न खाऊँगा कोई
हर मुक़ामे - ख़बरे - बद्से निकल आया हूँ

मैं यह समझा था कि पैमाना है लबरेज़ मेरा
दूसरोंसे है क़दम सूए-अदम तेज़ मेरा
आज मालूम हुआ सुस्त है रफ़्तार मेरी
बार है मुझपै वजूदे - अलम अंगेज़ मेरा

आज मालूम हुआ राह अभी बाक़ी है
मंज़िले-ग़म मेरे अल्लाह! अभी बाक़ी है
बाश और मरहलए - जाँसे गुज़रनेवाले
इक नया सद्मए-जाँ काह अभी बाक़ी है

---

१. 'बीसवीं सदी' मार्च १९५८ पृ० ८७।

तीर वह आके लगा है जो कमाँमें तो न था
क़द्र अन्दाज़की चश्मे-निगराँमें तो न था
हाय, यह रग तो कहीं दिलमें छुपा रक्खी थी
हाय यह ज़ख़्म मेरे वहमो-गुमाँमें तो न था

पाकिस्तान और भारतमें अख्तर साहबपर बहुत कुछ लिखा गया। लोगोंने शोकपूर्ण नज़्में और तारीखें कहीं। उनमें-से चन्द बतौर नमूना संक्षिप्तमें दी जा रही हैं—

जग्गी 'रअ़ना'

इक अदीबे-शहीर थे 'अख़्तर'
शाइरे - बे - नज़ीर थे 'अख़्तर'
तिश्ना-कामाने-इल्मो-फ़नके लिए
एक अब्रे - मतीर थे 'अख़्तर'
जान दे दी मगर न बदली वज़अ़
कितने साहिबे-ज़मीर थे 'अख़्तर'
क़हक़होंमें उड़ा दिया ग़मको
किस क़दर ख़ुश ज़मीर थे 'अख्तर'
शाने-महफ़िल थे, जाने-महफ़िल थे
कारवाँके अमीर थे 'अख़्तर'
एक महबूब दोस्त और शाइर
एक लायक़ मदीर थे 'अख़्तर'

गोपाल मित्तल

महरसे ताबनाक तर ज़र्रा
देवतासे बुलन्द तर इंसाँ
हर अदा उसकी कुफ़्रका अन्दाज़
लेकिन इसपर भी साहबे-ईमाँ

उसकी ज़ातो-सिफ़ात क्या कहिए
जिसका शैदाई इक ज़माना था,
झुक गया था मेरा सरे-मग़रूर
कितना आली वह आस्ताना था

मैंने सीखा उसीकी फ़ितरतसे
ज़हरे-ग़म पीके मुसकरा देना
हर नये ज़ुल्मपर ज़मानेके
सिर्फ़ इक क़हक़हा लगा देना

जाने कितना जमील था वह नक़्श
जो ब-हर रंग नातमाम रहा,
इन्तहा उसके ज़र्फ़की मत पूछ
ख़ुम लुँढाकर जो तिश्नाकाम रहा

जाने किन मंज़िलोंमें ले पहुँचा
ज़ौके-तकमीले-जुस्तजू उसको
ले उड़ी किन बुलन्दियोंकी तरफ़
उसकी परवाज़े-आर्ज़ू उसको.

साज़ हर चन्द टूट जाता है,
नग़मए - साज़ मर नहीं सकता,
मौतका ,सर्द और ज़ालिम हात
उसको ख़ामोश कर नहीं सकता

उसकी वह महर्बां शफ़ीक़ नज़र
क़ल्बको अब भी गुदगुदाती है,
ऐसा महसूस हो रहा है मुझे
उसकी आवाज़ अब भी आती है,

नसीम सिद्दीक़ी देहलवी

बा - मुरव्वत बज़्ला - गो एशार ख़ू
नेक दिल, ग़मख्वार, क़ानअ़, जूँ हुमा,
ग़लग़ला है, हिन्दो - पाकिस्तानमें
सामिए - इक़बालो - अकबर चल बसा,
साले - मर्गे - आँजहानी लिख 'नसीम'
उफ़ ! चराग़े - शाइरी गुल हो गया[1]

---

१. इस मिसरेसे मृत्यु सन् १९५८ ई० निकलता है।

'अख्तर' साहबका जो कलाम हमें उपलब्ध हो सका, उसमें-से चन्द अशआर यहाँ दिये जा रहे हैं।

शबाब[1] आया किसी बुतपर[2] फ़िदा[3] होनेका वक़्त आया।
मेरी दुनियामें बन्देके ख़ुदा होनेका वक़्त आया॥
उन्हें देखा तो ज़ाहिदने कहा—"ईमानकी यह है—
कि अब इन्सानको सज्दा रवा[4] होनेका वक़्त आया"
तकल्लुमकी[5] ख़मोशी कह रही है हर्फ़े-मतलबसे[6]।
कि अश्क-आमेज़ नज़रोंमें[7] अदा[8] होनेका वक़्त आया॥
ख़ुदा जाने यह है औजे-यक़ीं[9] या पस्तिए-हिम्मत[10]
ख़ुदासे कह रहा हूँ, "नाख़ुदा होनेका वक़्त आया"
हमें भी दोस्तोंसे आ पड़ा है काम कुछ यानी—
हमारे दोस्तोंके बेवफ़ा होनेका वक़्त आया।
नवीदे-सर बुलन्दी[11] दी बरहमनने तो मैं समझा

सगाने-दहरके आगे-दोता[12] होनेका वक़्त आया
ज़हन रहने-क़ौमियत[13], एहसास महबूसे-वतन[14]
वाए-नाकामी[15]! क़फ़सको आशियाँ समझा था मैं
हाथ शल[16] होते रहे, बहरे-दुआ[17] उठते रहे
तेरी बे-महरीको[18] अपना इम्तहाँ समझा था मैं

१. जोबन, रूप, २. सुन्दरीपर, ३. आसक्त, ४. नत-मस्तक होनेका उपयुक्त समय, ५. वार्त्तालापकी निस्तब्धता, वाणीकी मौनता, ६. अभिलाषी हृदयसे, हृदयाभिलाषा व्यक्त कर सकनेवाली भाषासे, ७. अश्रुपूर्ण नेत्रों द्वारा, ८. व्यक्त, ९. दृढ़ताका उत्थान, १०. साहसका पतन, ११. ऊँचा-मस्तक करनेका निमन्त्रण, १२. दुनियावी कुत्तोंके आगे झुकनेका, १३. मस्तिष्क राष्ट्रीयतामें रहन है, १४. चेतना देशके लिए बन्दी है, १५. अफ़सोस, १६. थकते रहे, १७. प्रार्थनाके लिए, १८. उपेक्षा, अकृपाको।

तू मेरे आमालका[1] पाबन्द निकला हश्रमें
ऐ ख़ुदा ! मेरे ख़ुदा !! तुझको ख़ुदा समझा था मैं
आह सौदागर ही थे, वोह दोस्त भी 'अख़्तर' जिन्हें
बे - नियाज़े - काविशे - सूदो ज़ियाँ[2] समझा था मैं

अभी तो यही देखना चाहता हूँ
नहीं चाहता उनको या चाहता हूँ
वोह कहते हैं "तुम मुझसे क्या चाहते हो"
यही कुछ तो मैं जानना चाहता हूँ
मेरी नीयतोंपर नज़र रखने वालो !
ख़ुदारा बतादो मैं क्या चाहता हूँ
न समझा कोई जिसको वह सिर्फ़ हूँ मैं
ग़लत हो चुका हूँ, मिटा चाहता हूँ
वोह पुरजोश आँसू, वोह ख़ामोश आहें
वही इश्क़की इब्तदा[3] चाहता हूँ
मैं समझा वोह कुछ पूछना चाहते है
वोह समझे कि मैं कुछ कहा चाहता हूँ

सैरे - दुनियासे ग़रज थी, महवे - दुनिया[4] कर दिया
मैंने क्या चाहा, मेरे अल्लाहने क्या कर दिया ?
रोकनेवाला न था कोई ख़ुदाको इसलिए
जो कुछ उसके जीमें आया, बे - महाबा[5] कर दिया

१. कर्मोका, २. हानि-लाभके स्वार्थोसे मुक्त, ३. प्रारम्भ, ४. संसार-लिप्त, ५. निःसंकोच, बग़ैर किसी लिहाजके ।

आर्ज़ूकी पुरसकूँ बस्तीमें[1] हलचल डाल दी
इक निगाहसे तूने दिलमें हश्र[2] बरपा कर दिया
हाँ इसी कम्बख़्त दिलने कर दिया अफ़शाए-राज़[3]
हाँ इसी कम्बख़्त दिलने मुझको रुसवा[4] कर दिया
जिन्दगी बैठी थी अपने हुस्नपर[5] फूली हुई
मौतने आते ही सारा रंग फीका कर दिया
हुस्नकी पहले तो सब मुझपर हक़ीक़त खोल दी
और फिर ख़ामोश रहनेका इशारा कर दिया
बेकसीके दोशपर[6] इक बोझ था बारे-उमीद[7]
मरहबा[8] ऐ यास[9] ! तूने बोझ हलका कर दिया
हुस्नको पहना चुके जब ख़ुद नुमाईका लिबास
इश्क़ने सर पीटकर पूछा कि "यह क्या कर दिया?"

मुलाक़ातें भी होती हैं, मुलाक़ातोंके बाद 'अख़्तर' !
वह मुझको भूल जाते हैं, मैं उनको याद करता हूँ,
बुतोंके इश्क़में खोया गया हूँ वर्ना ऐ 'अख़्तर' !
ख़ुदा शाहिद[10] है मैं अक्सर ख़ुदाको याद करता हूँ,

जिसकी दुनिया आपसे थी, जिसकी दुनिया आप थे
आओ उस बदबख़्तके[11] अंजामकी[12] बातें करें

१. शान्त हुई इच्छाओंमें, २. प्रलय, ३. भेद खोल दिया, ४. बदनाम, ५. रूपपर, ६. कन्धोपर, ७. आशाओंका बोझ, ८. शाबाश, ९. निराशा, १०. साक्षी, गवाह ११. अभागे, १२. हालातकी,दुर्दिनोंकी।

उम्र भरका अह्दे-उल्फ़त[1] इक ख़याले-ख़ाम[2] था
आओ लेकिन उस ख़याले-ख़ामकी बातें करें
ज़िन्दगी बेशक तेरा इनआ़म है यारब! मगर—
सुन सके तो कुछ तेरे इनआ़मकी बातें करें

जिन्हें हासिल है तेरा क़ुर्ब,[3] खुश क़िस्मत सही लेकिन—
तेरी हसरत लिये मरजानेवाले और होते हैं
जो ठोकर ही नहीं खाते, वोह सब कुछ है मगर वाइज़!
वोह जिनको दस्ते-रहमत[4] खुद सँभाले और होते हैं
तलाशे-शमअ़से पैदा है सोज़े-नातमाम 'अख़्तर'!
ख़ुद अपनी आगमें जलजानेवाले और होते हैं

वह अच्छे कटे या बुरे कट गये
बाहम[5] मिलके दो दिन गुज़ारे तो थे
दिलोंमें भी फ़र्क़ आ गया था तो क्या
निगाहोंको हासिल नज़ारे तो थे
बुरा जानते थे तो फिर क्या हुआ
बुरे ही सही, हम तुम्हारे तो थे

जिस ज़मींपर तेरा नक्शे-कफ़े-पा[6] होता है
एक-इक ज़र्रा वहाँ क़िब्लानुमा[7] होता है

---

१. प्रेम निबाहनेकी प्रतिज्ञा, २. व्यर्थविचार, ३. सामीप्य, नज़दीकी, ४. दयालुहाथ (ख़ुदासे अभिप्राय है) ५. परस्पर, ६. चरण-चिह्न, ७. काबे जितना पूज्य।

सुन ऐ जोशे-जुनूँ ! तक़्लीद मजनूँकी नहीं अच्छी
मुबादा हम भी रह जायें किसी दिन दास्ताँ होकर

यह तेरे दस्ते-करमको[१] खींच लेगा एक दिन
ऐ ख़ुदा ! रहने न दे दस्ते-दुआ साइलके[२] पास

तुम्हारे इक तबस्सुमसे[३] जो बन जाती थी नूरानी[४]
वही ग़मकी घटा फिर छा गई क्या तुम न आओगे?
वफ़ा की सिस्कियाँ[५] इसपर हविसके क़हक़हे[६] तौबा
मुहब्बतकी फ़ज़ा[७] थर्रा गई क्या तुम न आओगे?

ग़रूरे-ज़ब्तकी[८] रुसवाइयाँ[९] क्या तुम न देखोगे,
मेरी फ़रियाद लब तक आ गई क्या तुम न आओगे ?
बहारे-जाँफ़िज़ा[१०] बुलबुलके नग़मे[११], चाँदनी रातें,
हर-इक शै आने वाली आ गई क्या तुम न आओगे ?
तुम्हारी दीद[१२] ही मक़सद[१३] रहा जिसकी बिसारतका[१४]
वह चश्मे-मुन्तज़िर[१५] पथरा गई क्या तुम न आओगे ?
मेरे पिन्दारका[१६] अब ज़िक्र क्या ? मैं ख़ुद जो कहता हूँ
तबीयत हिज्रमें घबरा गई, क्या तुम न आओगे ?

---

१. कृपा करनेवाले हाथोंको, २ भिक्षुककी प्रार्थनाके लिए हाथ उठानेकी शक्ति, ३. मुसकानसे, ४. प्रकाशमान, ५. नेकी, भलाई सिसकियाँ ले रही है, ६. तृष्णा या कामुकता उसपर हँस रही है; ७. मुहब्बतकी दुनिया, ८. सब्रके अभिमानकी, ९. बदनामियाँ, १०. प्राण संचारक बहारें, ११. संगीत, १२ दर्शन, १३. उद्देश्य, १४. दृष्टिका, १५. प्रतीक्षा करनेवाली आँखें, १६. विचारका, अभिमानका ।

मेरे चमनकी ख़िज़ाँ मुतमइन[1] रहे कि यहाँ
ख़ुदाके फ़ज़्लसे[2] अन्देश - ए - बहार[3] नहीं

सुनाकर हाल क़िस्मत आज़मा कर लौट आये हैं
उन्हें कुछ और बेगाना[4] बनाकर लौट आये हैं
फ़रेबे-आर्ज़ू[5] अब तो न दे ऐ मर्गे-मायूसी[6] !
हम उम्मीदोंकी इक दुनिया लुटाकर लौट आये हैं
बिछे जाते हैं क्यों यारब! किसी काफ़िरके क़दमोंमें
वह सज्दे जो दरे-काबापै जाकर लौट आये हैं

मुरव्वतकी अदापर बन्द आँखें करके लुट जाना,
यह नादानी सही, लेकिन यह नादानी नहीं जाती,
वही रिन्दी[7] है अपनी और वही ज़ाहिदकी फ़हमाइश[8]
बुरी आदत कोई भी हो ब - आसानी नहीं जाती,

वहाँ दिल ले चला है फिर वही इक बात कहनेको
कही जाती है जो अक्सर मगर मानी नहीं जाती
किया था मैं ने शिकवा[9], आपने आँखें झुका ली थीं
हुई मुद्दत मगर अबतक पशेमानी[10] नहीं जाती

१. निश्चिन्त, २. कृपासे, ३. बहार आनेकी सम्भावना, ४. पराया, ५. इच्छाओंका धोका, ६. निराशा रूपी मृत्यु, ७. मौजीपन, सुरापान-प्रियता, ८. नसीहत देनेकी आदत, ९. शिकायत, १०. शर्मिंदगी।

बेलौस[1] मुहब्बतकी नज़र ढूँढ़ रहा हूँ
अन्जाम[2] तो ज़ाहिर है मगर ढूँढ़ रहा हूँ
जिन सज्दोंकी[3] है अर्शे-बरींको[4] भी तमन्ना[5]
उन सज्दोंके लायक़ कोई दर[6] ढूँढ़ रहा हूँ

एक बुत, एक ही बुतका हूँ पुजारी 'अख़्तर' !
अपने इस शिर्क पै[7] तौहीदका[8] दावा है मुझे

जब हँसने वाले इश्क़की ज़िल्लतपै हँस चुके
हमने फिर उनका नाम लिया और रो दिये
पहले तो शर्मे - ज़ब्तसे चुप थे हुज़ूरे - दोस्त
फिर हौसिलेसे काम लिया और रो दिये

हम, असीराने - क़फ़सकी[9] हाय रे मजबूरियाँ
सामने आँखोंके जलता आशियाँ देखा किये
आशियाँ बाँधा किये, हर फ़स्ले-गुलमें हमसफ़ीर[10]
और हम अपने क़फ़सकी तीलियाँ देखा किये
आशियाँ बाँधा मगर आसूदगीका[11] ज़िक्र क्या
किस तरह गिरती है उसपर बिजलियाँ देखा किये

---

१. निस्वार्थ, २. परिणाम, ३. नमाज़में झुकनेवाले सरकी, ४. खुदाको, ५. इच्छा, ६. द्वार, ७. खुदाके अतिरिक्त किसी औरकी इबादत करना, ८. एक ईश्वरवादका, ९. पिंजरेके कैदियोंकी, १०. साथी, ११. सुख-चैनका ।

हर शख़्सको बख़्शी गई बद-ओ-नेक तमीज़ें
हर शख़्स ज़ियाँकार है मालूम नहीं क्यों ?
पत्ता भी अगर हिलता है तो उसकी रज़ासे
और बन्दा गुनाहगार है मालूम नही क्यों ?
दींदार है ज़ाहिदकी ज़बाँ भी, मेरा दिल भी
फिर मुफ़्तकी तकरार है मालूम नही क्यों ?

बुरा हो गया या भला हो गया
मुहब्बतमें जो हो गया हो गया
न पूछो सरे-हश्र ज़ाहिदका हाल
समझते थे क्या और क्या हो गया

लीजिए फिर एतबार उनका किया
हमने अपने साथ फिर धोका किया
सर - गिरानीका सबब आख़िर कोई
क्या ख़ता क्या जुर्म हमने क्या किया ?

ज़रा इक छेड़ दो ज़ाहिदसे क़िस्से हूरो-ग़िल्माँके
फिर इस कम्बख़्तकी रंगीं बयानी देखते जाओ
टपक ले ख़ून अरमानोंका आँखोंसे ज़रा ठहरो
मेरी लुटती हुई रंगीं जवानी देखते जाओ

बहुत चर्चे थे यारोंमें मेरी जादू बयानीके
हुज़ूरे-दोस्त मेरी बेज़बानी देखते जाओ

बराए-ऐशो-मस्ती[1] भी है शग़्ले-मै,[2] मगर यारब !
तेरी दुनियामें कुछ बदबख़्त[3] बहरे-ग़म[4] भी पीते हैं

मुझको देखा फूटके रोया
अब समझा, समझाने वाला

इन्कारे-सिज्दा है[5] यहाँ किस रूसियाहको[6] ?
शायाने-सिज्दा[7] भी तो मगर कोई दर मिले ?
ऐशे-गुरेज़पाका[8] तसव्वुर[9] भी मिट गया
ग़म ऐसे मुस्तक़िल[10] मिले और इस क़दर मिले

कोई बिजली इधर नहीं आती
मौत भी राहपर नहीं आती
शबे-हिजराँका[11] माजरा ही क्या ?
शाम आकर सहर[12] नहीं आती
इश्क़ जीका ज़ियाँ[13] सही लेकिन
मौत कुछ पूछकर नहीं आती
दर्दे-दिलका इलाज, तर्के-वफ़ा ?
शर्म ऐ चारागर ! नहीं आती

---

१. भोग-विलासमें लीन, २. सुरापानमें व्यस्त, ३. अभागे, ३. ग़ममें डूबे हुए, ५. मत्था टेकनेसे इन्कार, ६. कम्बख़्तको (काले मुखको) ७. मत्था टेकने योग्य, ८. सुख पानेका, ६ विचार स्वप्न, १०. स्थायी, ११. विरह-रात्रिका, १२. सुबह, १३. वबाल ।

सहीफ़े[१] भी, पयम्बर[२] भी तेरे, इबलीस[३] भी तेरा
इलाही रोज़े-महशर इम्तहाँ तेरा है या मेरा ?
अलामत मेरे इसयाँकी[४] है बेशक दाग़े-पेशानी[५]
मगर यह दाग़े-दिल यारब ! निशाँ तेरा है या मेरा ?

मुसल्सल[६] मुसीबत, सरासर तबाही
मेरी ज़िन्दगानी अरे तौबा ! तौबा ! !

क्या बनके रह गई है ज़रा आके देखले
इक ख़ानुमाँ-ख़राबकी दुनिया तेरे बग़ैर
कहता फिरूँ हर-इकसे ग़मे-दिल कहाँ यह ताब
कह भी सकूँ तो कौन सुनेगा ? तेरे बग़ैर

फ़रेब हज़रते-आदमको दे गया इबलीस[७]
क़रीब ही था ख़ुदा भी, ख़ुदासे कुछ न हुआ[८]
ख़ुदा तो ठहरा मुसलमान, उसका शिकवा क्या ?
मेरे लिए मेरे परमात्मासे कुछ न हुआ ॥

---

१. क़ुरान (ईश्वरीय ग्रन्थ), २. नबी, ३. शैतान, ४. पापोंका चिह्न, ५. माथेका वह काला दाग़ जो नमाजियोंके पड़ जाता है, ६. लगातार, ७. शैतान, ८. क़ुरानमें आयत है कि ख़ुदा हर इन्सानकी गलेकी रगके पास है, इसी ओर व्यंग्य है कि ख़ुदा इतना समीप था, तब भी इन्सानको शैतान पापोंमें फँसाता रहा ।

क़िते

इक निहत्था बेनियाज़े-काविशे-बूदो-नबूद[1]
इक मुसल्लह और फ़िक्रे-आक़बतमें ग़र्क़ है[2]
पूछनेवाले ! यह दोनोंमें किसीसे पूछले
बुज़दिली और आत्म शक्तिमें कितना फ़र्क़ है ?

होंटोंको सरे-क़ल्ब सिया जाता है
तब नाम शहीदोंका लिया जाता है
क्या जाने ज़बाँ जामे-शहादतके मज़े ?
यह जाम तो शहे-रगसे पिया जाता है

वक़्ते-आख़िर उम्रभरके सब फ़साने कह गई
वह पशेमानी तेरी और उसपै हैरानी मेरी
अपनी - अपनी मंज़िले - मक़सूद पर ले जायेगी
दोस्तोंको उनकी अक़्ल और मुझको नादानी मेरी

ख़ुदाकी तो इक दिल्लगी हो गई
यहाँ वक़्फ़े-ग़म ज़िन्दगी हो गई
फ़साना वह दुश्मनका सुनने लगे
मेरी बात आई - गई हो गई

—अर्श साहबके सौजन्यसे

---

१. एक ओर अपने अस्तित्व आदिसे निर्लिप्त निःशस्त्र है, २. दूसरी ओर परलोककी चिन्तामें लीन शस्त्रधारी है।

दाता है बड़ा रज़्ज़ाक़[1] मेरा, भरपूर ख़ज़ाने हैं उसके
यह सच है मगर ऐ दस्ते-दुआ ! हर रोज़ तक़ाज़ा कौन करे ?

नेमतोंको देखता है और हँस देता है दिल
महवे-हैरत हूँ कि आख़िर क्या है मेरे दिलके पास

एक बार जो मिल जायें वोह बिछुड़े हुए लमहे[2]
सौ बार मुझे तल्ख़िए - ऐय्याम[3] गवारा

कोई मेरी ख़ता है या तेरी सनअतकी ख़ामी है,
फ़रिश्ते कह रहे हैं आदमीसे कुछ नहीं होता,
अगर तेरी ख़ुशी ही तेरे बन्दोंकी मसर्रत है,
तो ऐ मेरे ख़ुदा ! तेरी ख़ुशीसे कुछ नहीं होता,

ग़रूरे-ज़ब्तसे[4] आहो - फ़ुग़ाँ[5] तक बात आ पहुँची
हवसने[6] क्या किया, दिलसे ज़बाँ तक बात आ पहुँची
सकूने - दिल[7]से नाक़ूसो - अज़ाँ[8] तक बात आ पहुँची
ख़िलाफ़त[9]से जबीनो - आस्ताँ[10] तक बात आ पहुँची

---

१. रिज़्क़ देनेवाला, दाता, २. पल, ३. कड़वे-दिन, दुर्दिन, ४. सहन करनेकी शक्तिसे, ५. आह, निःश्वास तक, ६. कामुकता, लालसाने, ७. दिलके चैनसे, ८. शंखो और अज़ानोंमें फँस गया, ९. ख़लीफ़ाओं तक न रह कर, १०. नमाज़ो-खानकाओं तक ।

मिली थी आँख और आहो-फ़ुग़ाँ तक बात आ पहुँची
ज़रा-सी बात थी लेकिन यहाँ तक बात आ पहुँची
हमारी दास्ताँमें ज़िक्रे-.कैसो-कोहकन[1] आया
वहाँसे फिर हमारी दास्ताँ तक बात आ पहुँची
जहाने-दोस्ती[2] इक जन्नते-ईसार[3] होता था
वहाँ भी काहिशे-सूदो-ज़ियाँ[4] तक बात आ पहुँची

आख़िरी ग़ज़ल

मिलेगी शेख़को जन्नत हमें दोज़ख़ अ़ता होगा
बस इतनी बात है, जिसके लिए महशर बपा होगा
रहे दोनों फ़रिश्ते साथ अब इन्साफ़ क्या होगा
किसीने कुछ लिखा होगा, किसीने कुछ लिखा होगा
बरोज़े-हश्र हाकिम क़ादरे-मुतलक़ .ख़ुदा होगा
फ़रिश्तोंके लिखे और शेख़की बातोंसे क्या होगा
तेरी दुनियामें सब्रो-शुक्रसे हमने बसर कर ली
तेरी दुनियासे बढ़कर भी तेरे दोज़ख़में क्या होगा

---

१. मजनूँ-फ़रहादका उल्लेख, २. इष्ट-मित्रोंका समूह, ३. जन्नतसे भी श्रेष्ठ समझा जाता था, ४. हानि-लाभकी सीमा तक।

मुरक्कब हूँ मैं निसियानो - ख़तासे क्या कहूँ यारब !
कभी हर्फ़े - तमन्ना भी ज़बाँपर आ गया होगा
सकूने - मुस्तक़िल, दिल बे - तमन्ना, शैख़की सुहबत
यह जन्नत है तो इस जन्नतसे दोज़ख़ क्या बुरा होगा
मेरे अशआ़र पर ख़ामोश है जुज़बुज़ नहीं होता
यह वाइज़ वाइज़ोंमें कुछ हक़ीक़त-आशना होगा
भरोसा किस क़दर है तुझको 'अख़्तर' उसकी रहमत पर
अगर वह शैख़ साहबका .खुदा निकला तो क्या होगा

१ अगस्त १९५८ ई०]

हफ़ीज़ जालन्धरी

अब्दुलअसर 'हफ़ीज़' पंजाबके जालन्धर शहरमें १४ जनवरी १९०० ई०में उत्पन्न हुए। आपके पिता शमसुद्दीन साहबको कुरआन कंठस्थ था और फ़ौजके लिए वर्दियाँ बनवानेका धन्धा करते थे।

जो हफ़ीज़ कभी भारतके इस कोनेसे उन कोनेतक अपनी शाइरी और स्वरलहरीके लिए विख्यात थे, जिन्हें शाइरीकी बदौलत अँग्रेज़ी सरकारसे खानबहादुरीका खिताब मिला और भारत-विभाजनके बाद अनेक नामवर शाइरोंके होते हुए भी पाकिस्तान-सरकारसे कौमी शाइर (राष्ट्रीय कवि) का पद और छः हज़ार रुपये वार्षिककी स्थायी-सनद प्राप्त कर सके, वही हफ़ीज़ सिर्फ़ छठे दर्जे तक पढ़े है। शाइरीका चस्का सातवीं क्लाससे ही लग जानेके कारण स्कूल परित्याग कर दिया। माँ-बापकी फटकार और मार-पीटका कुछ असर न हुआ।

आइए हम आपको स्वयं हफ़ीज़ साहबसे उनके जीवनपर कुछ प्रकाश डलवा रहे है —

"मेरा खा़न्दान तक़रीबन दो सौ बरस पेश्तर चौहान राजपूत कहलाता था। मेरे बुज़ुर्ग हिन्दूसे मुसलमान हो गये थे। मैं नन्हा-सा था, जब मुझे मुहल्लेकी मस्जिदमें दाखिल किया गया। मैं यक़ीनन उस ज़मानेमें ज़हीन लड़कोंमें शुमार होता था। क्योंकि मैने छः बरसकी उम्रमें ही क़ुरान शरीफ़ पढ़ लिया। बहुत से सूरे ज़बानी याद कर लिये और करीमा-ओ- मामक़ीमा रट लिये थे।

इससे आगे मै मस्जिदमें न चल सका। अब मुझे मिशन स्कूलमें दाखिल किया गया। वहाँसे मैं दूसरे दर्जेसे भाग निकला। सरकारी मदर्सेमें दाखि़ल हुआ, चौथी जमाअ़तमें वहाँसे भागा। आर्य-स्कूलमें

दाखिल हुआ। फिर मिशन हाईस्कूलमें ले जाया गया, लेकिन हिसाबसे मेरी जान जाती थी। हर रोज़ हिसाबके वक्त भाग जाता था। दूसरे दिन पिटता था। यह भागने और पिटनेकी जंग चार सालतक जारी रही। आखिर पिटनेपर भागना ग़ालिब आया और हमेशाके लिए भाग निकला।

शेरगोई यूँ तो मेरी उम्रके सातवें बरस ही शुरू हो गई थी। लेकिन इस मर्ज़का बाक़ाएदा हमला ग्यारह सालकी उम्रमें हुआ। जब मैं छठी जमाअतमें पढ़ता था और उस बीमारीका सबब इश्ककी गर्मी थी। लड़कपनका यह इश्क भी अजीब चीज़ था। ऐ काश मै उसको बयान कर सकता।

उस ज़मानेमें—नाविल, अफ़साने, ड्रामे, शुअराके दीवान, थियेटर, मुशाअरे सबसे दिलचस्पी हो गई थी। मेरे घरानेपर फ़रिश्तए-मौत (यमदूत) साया डाल रहा था। पाँच भाई यके बाद दीगरे नज़रे-अजल (एकके बाद एक मृत्युकी भेंट) हो गये। एक तरफ़ तो यह आफ़त थी, दूसरी तरफ़ मैं घरके लिए एक मुसीबत बन गया था। क्योंकि घरसे भागते वक्त जो कुछ हाथ लगता, उड़ा ले जाता।

लोग कहते है कि फ़न्ने-शाइरी मनहूस है। इस क़ौलमें सदाक़त ज़रूर है। अगर यह मान लिया जाये कि शेरगोई आवारगी साथ लाती है तो नहूसत (मनहूसी) का सबब भी समझमें आ जाता है। कमज़कम मेरे साथ तो यही गुज़री। आवारगी और शेरगोई, आँखोंपर पर्दे पड़े हुए थे।

आँख उस वक्त खुली, जब वालिदैनने मेरी शादी कर दी। उस वक्त मुझे मालूम हुआ कि मेरे घरानेकी दौलत पैदा करनेवाले अफ़राद (व्यक्ति) अजल (मृत्यु) के हाथों और जमा-जथा मेरे हाथों ग़ायब हो चुकी थी, और यह सब चन्द ही बरसमें हो गया था।

अब मुझे ज़िम्मेदारियोंका एहसास हो गया। मेरे वालिद (पिता) बूढ़े, वालिदा अलील (माँ बीमार), एक सौतेला भाई, जिसका ख़ान्दान बहुत वसीअ़ (विस्तृत), आमदनी बहुत क़लील (थोड़ी), बाक़ी बेवा बहनें, बेवा भावजें, यतीम बच्चे-बच्चियाँ, यह सब कुछ था। लेकिन मुझे काम-काज कोई न आता था। सिर्फ़ फ़ारसीकी चन्द किताबें, उर्दू-शुअ़राके चन्द दीवान मेरा मुबलिग़ इल्म (नाम मात्रका ज्ञान) और मुब्तदयाना ग़ज़लगोई मुबलिग़ फ़न (प्रारम्भिक ग़ज़लका अभ्यास केवल हुनर) था। पंजाबमें उर्दू-शाइरीका रिवाज ताज़ा-ताज़ा हुआ था और अवाम (सर्वसाधारण) को इससे कोई खास दिलचस्पी न थी। अलबत्ता मेरे वतन जालंधरको फ़ारसी ज़बानके मुसल्लिम उलसबूत उस्ताद (प्रामाणिक विद्वान्) मौलाना गरामीकी जन्मभूमि होनेकी वजहसे यह शर्फ़ (गौरव) हासिल था कि वहाँ बाक़ाएदा मुशाअ़रे होते थे और उन मुशाअ़रोंमें शहर और मुज़ाफ़ात (आस-पास गाँव) की बस्तियोंके शुअ़रा हिस्सा लेते थे।

मैंने सात-आठ सालकी उम्रमें गिरामीको एक मुशाअ़रेमें शेर पढ़ते सुना था। उस वक़्त तो मुझे यह मजलिस मज़हक़ाखेज़-सी (उपहास-योग्य-सी) नज़र आई। वाह-वा- सुब्हान अल्ला, मुकर्रर इरशाद हो, वल्लाह एजाज़ है, वल्लाह सहर है, वल्लाह जादू है, या दाद देनेवालोंका उछलना, हाथोंका हिलाना, सबका मिलकर शोर मचाना; अजीब मसखरापन मालूम होता था। क्या ख़बर थी कि आख़िर यही मसख़रापन मुझे भी करना पड़ेगा और उम्रका एक हिस्सा इसी तमाशागाहमें गुज़रेगा।

जब मैंने बाक़ाएदा ग़ज़लगोई शुरू की तो हस्बदस्तूर (प्रथाके अनुसार) क़दीमी उस्तादकी ज़रूरत लाहक़ (महसूस) हुई। क़रीबी बस्तीमें सरफ़राज़ाख़ाँ साहब 'सरफ़राज़' मुदर्रिस थे। जैसा उस वक़्त कहते थे, वैसा ही आज बुढ़ापेमें भी कहते हैं और मेरा ख़याल है कि अगर उनका

कहा हुआ सब शाया (प्रकाशित) हो जाये तो उसका हजम (विस्तार) २०–३० हज़ार सुफ़हात (पृष्ठों) से कम न होगा। .खैर मैंने आग़ाज़ (प्रारम्भ) की दो-तीन ग़ज़लें दिखाईं। उन्होने कोई खास इस्लाह न दी। लेकिन मैं अब तक उनका शुक्रगुज़ार हूँ। मुझे किसीने मशवरा दिया कि अपना कलाम हज़रते-गिरामीकी खि़दमतमें दकन इरसाल करूँ और इस्लाह चाहूँ। मैने ऐसा ही किया, और चन्द ग़ज़लें उनकी खि़दमतमें इरसाल कीं। जवाब मिला—"गिरामी फ़ारसीका शाइर है, उर्दूसे बहुत दूर, हफ़ीज़ जौहरे-क़ाबिल मालूम होता है। हफ़ीज़को चाहिए कि अपना कलाम बार-बार .खुद ही नाक़दाना नज़र (आलोचक-दृष्टि) से देखा करे।"

मैने इस मशवरे पर अमल शुरू कर दिया। ईमानकी बात यह है कि मेरी ग़ौरो-फ़िक्रकी आदत इसी मशवरेकी बदौलत है। फिर जब हज़रत गिरामी वज़ीफ़ा (पेंशन) लेकर हमेशाके लिए वतनमें मुक़ीम हो गये तो शाइरीके इस आफ़ताब लबे-बाम (उन्नत सूर्य) के सामने मैंने बाक़ाएदा ज़ानूए तलम्मुज़ तह (व्यवस्थित रूपसे शिष्यत्व प्राप्त) किया। अब फ़ारसीके मुतालए (अध्ययन) का शौक़ तो बढ़ गया, लेकिन अपने लिए उर्दू ही में शेर कहनेको बेहतर समझा।

मुताहृहल (शादी) हो जानेके बाद मैंने कस्बे-मआश (आजीविका) के लिए थोड़े ही अर्सेमें बीसियो पापड़ बेल डाले। रेलवे लाइनपर मेटी, (मेटगिरी) इत्र-फ़रोशी, कुलाहसाज़ी, खयाती (दर्ज़ीगीरी), फौजकी ठेकेदारी, ख़ुतूतनवीसी, (पैसे लेकर चिट्ठियाँ लिखना), रेलवे-स्टेशनों पर मज़दूरी, आटेकी मशीन, शाइरोंको ग़ज़लें लिखकर देना, सिंगर सीविंग मशीन कम्पनीकी मेनेजरी सब कुछ कर डाला। लेकिन पूरा न पड़ा। फ़राग़त नसीब (निश्चिन्तता प्राप्त) न हुई। इतने बड़े कुनबेका पेट पालना मेरे बसकी बात न थी। मकानातको बेचकर खाता-खिलाता रहा, और सच यह है कि नौकरी हो या कारो-बार, मैं किसी कामका

न था। रात-दिन फ़िक्रे-शेर, तबियत कमज़ोर और हस्सास, (भावुक), ख़िलाफ़त और कॉंग्रेस दोनोमें शामिल, लेकिन लीडरोंसे मुतनफ़्फ़र (घृणा), नतीजा यह कि न इधर न उधर।

१६२१ ई० में सिंगर कम्पनीकी मुलाज़मत छोड़ दी। वतनमें आ गया और वहाँसे उर्दू-जबानमें एक माहाना रिसाला (मासिक पत्र) 'एजाज़' जारी किया। जिसके सरपरस्त मौलाना गिरामी थे। यह रिसाला ५ माह बाद आख़िरी माली चरका देकर मर गया। उस वक्त मायूसी (निराशा) से मेरी हालत दीवानगी तक पहुँच गई थी। क्योंकि मैंने एक बहुत बड़ा मकान फ़रोख्त कर (बेच) दिया था। वालिद साहबको इत्तिला भी नहीं की थी। उनको मालूम हुआ तो उन्होंने मुझे चपतियाया और घरसे निकाल दिया। उस वक़्त मै एक बच्चीका बाप था।

अब मैंने काश्मीरका पैदल सफ़र किया। इरादा तो कुछ और था, लेकिन ग़मीदा वालिदा (दुःखी माँ) का ख़याल, नन्हीं बच्ची का तसव्वुर (ध्यान) और ज़ौजा (पत्नी) के मुत्तअल्लिक ज़िम्मेदारियोंका एहसास सद्दे-राह (मार्गमें आड़े) था। पलट आया और रिसाला 'शबाब' उर्दू लाहोरमें मुलाज़मत कर ली। इसके बाद 'नौनिहाल' और 'हज़ार दास्तान' की इदारत (सम्पादकी) मेरे सुपुर्द हुई। फिर 'फूल' और 'तहज़ीबे-निसवाँ' में काम किया। यहाँसे ख़ैरसे रियासत ख़ैरपुर (सिन्ध) का शाइरे-दरबार मुक़र्रर हुआ। लेकिन यह जिन्दगी मेरे मिज़ाजके ख़िलाफ़ थी, पलट आया।

अब मुझे अदबी (साहित्यिक) और सहाफ़ती ज़िन्दगी (पत्रकार-जीवन) का तजरुबा हो चुका था और यह मालूम हो गया कि पानी किस रुख़ बहता है? इस मैदानमें जो कुछ मैंने अपनी आँखोंसे देखा—आप-बीती और जग-बीती—दोनों इस क़द्र तल्ख़ (अप्रिय, कड़वी) हैं कि अगर बयान करूँ तो एक आफ़त बरपा हो जाये।

१९२२ ई० में लाहोर आया था। उस वक़्तसे अब तक बराबर अदब-और-शेर (साहित्य सेवा और शाइरी) मेरा ओढ़ना-बिछौना है। मुशाअ़रेकी वाह-वा, इस्लामी अंजुमनोंकी सुब्हान अल्ला, दादकी वसूली और चन्दोंकी फ़राहमी (एकत्र करनेका कार्य) मेरे मशाग़ल (कार्य) रहे हैं। बड़े-बड़े मुशाअ़रे देख डाले हैं। धड़ाधड़ दाद वसूल की है, हज़ारों इन्सानोंको हमातनगोश और हमाजान पुरजोश कर दिया है। लाखों रुपयोंका चन्दा दूसरोंकी जेबोंसे निकलवाकर अंजुमनों (समितियों) के ख़ज़ानेमें दाख़िल करा दिया है। बड़ी-बड़ी रियासतोंके रऊसासे शर्फ़-मुलाज़मत (नौकरीका गौरव) हासिल किया है। बड़े-बड़े लीडरों, नामी गिरामी अदीबो-शाइरोंसे मुलाक़ात रही है। दरबारोंमें हाज़िरीकी इज्जत और दरगाहोंमें ज़मीनबोसीकी सआ़दत (फ़र्श चूमनेकी इज़्जत) मिल चुकी है।"[1]

हफ़ीज़को अपने जीवनमें अनेक कटु अनुभव हुए। भाइयोंकी मौत, बड़े परिवारके भरण-पोषणकी चिन्ता, आजीविकाके लिए दर-दरकी ठोकरें, शौक़े-शाइरीकी बदौलत कूचए-आवारगीकी लानतके अलावा समकालीन साहित्यिकों और शाइरोंकी स्पर्द्धाओं एवं कटु आलोचनाओंके वार भी बहुत सहने पड़े है। फ़र्माते हैं—

"१९२१ ई०में जब मैंने पहले-पहल रिवायती अंदाज़े-सुख़न (पुरातन शाइरीके रिवाज) से अलग हटकर अपने अन्दाज़से लिखना शुरू किया था। उसी वक़्तसे मेरा उनसे साबिक़ा (वास्ता) है। उस वक़्त मै ताज़ा वारिद (नवीन) था। दुनिया-ए-शेरो-सुख़नमें बाग़े-बहिश्त समझकर दाख़िल हुआ था। मुझे ख़बर न थी कि यहाँ जङ्गलका क़ानून है। मुझे ऐसी मख़लूक़ (जनता) की भीड़-भाड़में-से भी राह निकालनी पड़ी है, जिसका शऊर अभी दबोच लेने, तिक्का-बोटी (टुकड़े-टुकड़े, बोटी-बोटी)

---

१. निगार जनवरी-फ़रवरी १९४१ ई०।

कर डालने और खाजानेसे आगे नहीं बढ़ा। बाग़े-अदब उनकी शिकार-गाह (साहित्यिक-क्षेत्र उनके शिकार खेलनेका स्थान) हैं। मुझे उनके इक्के-दुक्केसे भी दो-चार होना (अकेले-दुकेलेसे भी वास्ता) पड़ा है और टोलियाँ भी मुझपर लपकीं-झपटीं।

पहले यह थपकी देते हैं कि कोई सहम जाये, या उलझ पड़े तो हजूम (आक्रमण) करते हैं। इनसे बचनेका सिर्फ़ एक हथियार दरकार है। बे-परवाह मुसकराहट। इनको क़त्ल करनेमें वक्त ज़ाया (नष्ट) न करना चाहिए। यह ख़ुद एक-दूसरेके क़ातिल है। हाँ जिसे मुसकरा देनेकी तोफ़ीक़ (आदत, गुण) हो, उससे ये दूर भागते है, ग़ुर्राते हुए पलट-पलटकर दाँत दिखाते हुए।

इनके सामने चुमकारकी हड्डी भी न फेंकना चाहिए। इस तरह ये एक दूसरेपर पिल पड़ते है और यह मंज़र (दृश्य) कुछ ऐसा ख़ुश-गवार नहीं होता। इनमें-से हरेक अपने साथीसे ख़ाइफ़ (भयभीत) है कि न जाने किस वक्त झिंझोड़-भँभोड़ डाले।...

ऐ राही-ए-अदब ! (साहित्यिक मार्गके पथिक !) ऐ मुसाफ़िरे-शेरो-सुख़न ! अगर तेरे पास बेपरवा मुसकराहटका ज़बर्दस्त असा (लाठी) नहीं, तो इस बाग़में दाख़िल न होना। इस जंगलसे न गुज़रना—

नहीं अताबे-ज़माना ख़िताबके क़ाबिल
तेरा जवाब यही है कि मुसकराये जा[1]"

'हफ़ीज़' ने ११ वर्षकी उम्रसे यानी १६११ ई० से नियमित शाइरी प्रारम्भ कर दी। चली आई प्रथाके अनुसार आपने भी शाइरीकी बिस्मिल्लाह ग़ज़लसे की और १६२१ तक उसी पुराने ढंग पर ग़ज़ल कहते रहे। इसके बाद आपके दृष्टिकोणमें अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। आपने

---

१. तलख़ाबा शीरीं पृ० १६–२०।

उर्दू में बहुत-से हिन्दी शब्दोंको इस ख़ूबीसे सँजोया कि उर्दूके रूपमें चार चाँद लग गये।

आपके कलामके तीन संकलन प्रकाशित हुए हैं—

१. नग़मए-ज़ार (१९२५ ई० में प्रकाशित)

२. सोज़ो-साज (१९३३ ई० में प्रकाशित)

३. तल्ख़ाबा-शीरीं (१९४६ ई० में प्रकाशित)

प्रथम दो संकलनोंके उद्धरण 'शेरोशाइरी' में हफ़ीज़ साहबके परिचयके साथ दिये जा चुके है। यहाँ तीसरे संकलनसे चुनाव दिया जा रहा है। इस संकलनमें १९३३ से १९४६ तकका कलाम मुद्रित हुआ है।

मेरा कलामे-बेहतरीन

इस ८ बन्दकी नज़्ममें हफ़ीज़ने अपने उन कटु अनुभवोंका उल्लेख किया है, जो शाइराना ज़िन्दगीमें उन्हे पेश आये। बतौर नमूना दो बन्द दिये जा रहे हैं—

मुद्दतों जिन्से-सुख़नके[1] बेचनेपर था मदार[2]
मेरी मज़दूरी चुकाते थे मेरे सरमायादार
कौड़ियोंमें रोलते थे जब वह मोती बार-बार
दीदके[3] क़ाबिल हुआ करते थे मेरे शाहकार
ख़न्दा[4] आता था मेरे लब पर, मगर अन्दोहगीं[5]
ख़न्दए-अन्दोहगीं[6]
मेरा कलामे-बेहतरीं

---

१. शाइरीरूपी वस्तु, २. अवलम्बन, ३. देखने योग्य ४. हँसना, ५. व्यथापूर्ण, ६. ग़मग़ीन मुस्कान ।

शेरका दामन गज़ोंसे नापते थे बे-शऊर
फिर सियाही बनके ढलता था मेरी आँखोंका नूर
बाद अज़ाँ होती थी मेरी हाज़िरी उनके हुज़ूर
सर्द - महरी[1] देखती थी गर्मिए - चश्मे - ग़यूर[2]
पानी - पानी होके बह जाती थी आहे-आतिशीं[3]
मेरी आहे-आतिशीं
मेरा कलामे-बेहतरीं

अपने वतनमें सब कुछ है प्यारे

'हफ़ीज़' १९३८ ई०में भारतसे इंगलिस्तान गये तो वहाँ आपने एक दोस्तसे पूछा—"तुम यहाँ १४-१५ बरससे रह रहे हो, वतन कब चलोगे ?" उसने जवाब दिया—"अपने वतनमें क्या रक्खा है ?" हफ़ीज़ने वहाँ रहकर यह महसूस किया कि इंगिलिस्तानकी रंगीनियाँ स्वयं उन्हें भी अपनी तरफ़ आकर्षित कर रही हैं। उसी आकर्षणके मोहनी मंत्रको व्यर्थ करनेके लिए आपने १२ बन्दकी यह नज़्म कही और अपने भारत देशको भूल जानेवाले और उनके दिलो-दमाग़पर छाजानेवाले अंग्रेज़ोंके दरमियान यह नज़्म पढ़ी। नज़्म सुनकर भारतीय द्रवित हो उठे और उनका वह दोस्त और बहुत-से भारतीय, जो वतन वापिस नहीं आना चाहते थे, भारत लौट आये। यहाँ केवल ४ बन्द दिये जा रहे है—

रश्के-अदन[4] है, बाग़े-वतन भी
गुल भी हैं मौजूद, गुल पैरहन भी
नाज़ुक बदन भी, ग़ुञ्चा दहन भी
लैलिए-रविश भी शीरीं सुख़न भी

---

१. बेरहमी, बेमुरव्वती, २. स्वाभिमानीकी नज़रोंकी गर्मी, ३. आग रूपी आह, ४. जन्नतका बाग़, स्वर्गीय उद्यान।

कुछ कम नहीं वह
उजड़ा चमन भी
उसके भी इकबार करले नज़ारे
अपने वतनमें
सब कुछ है प्यारे !

अपने वतनमें
सब कुछ है प्यारे
उस हुस्नमें है, हलका नमक भी
मैका नशा भी, लुत्फ़े-गज़क भी
रंगीन कलियाँ, जिनमें महक भी
दिलमें वफ़ा भी, दर्द और तपक भी
रूए - ज़मी भी
चश्मे - फ़लक भी
सब हैं भिकारी, भारतके द्वारे
अपने वतनमें
सब कुछ है प्यारे !

अपने वतनमें
सब कुछ है प्यारे !
वह सीधी-सादी बच्चोंकी माएँ
आँचलमें जिनके ठंडी हवाएँ
ज़ुल्फ़ें हैं जिनकी काली घटाएँ
भूलोगे कब तक उनकी वफ़ाएँ ?

कब तक करोगे
उनपर जफ़ाएँ ?
छोड़ा है उनको, किसके सहारे
अपने वतनमें
सब कुछ है प्यारे !

अपने वतनमें
सब कुछ है प्यारे !
मासूम - मासूम भोली निगाहें
दिल ढूँढ़ता है, जिनकी पनाहें
किन हसरतोंसे तकती हैं राहें,
वह गर्म आँसू वह सर्द आहें
मानें - न - मानें
चाहें - न - चाहें
खींचेंगे इक दिन, उनके इशारे
अपने वतनमें
सब कुछ है प्यारे !

फ़रेबे - आज़ादी

शेरोंको आज़ादी है,
आज़ादीके पाबन्द रहें
जिसको चाहें चीरें - फाड़ें
खायें - पियें आनन्द रहें

साँपोंको आज़ादी है
हर बसते घरमें बसते हैं
इनके सरमें ज़हर भी है,
और आदत भी है डसनेकी

शाहींको आज़ादी है
आज़ादीसे परवाज़ करें
नन्ही-मुन्नी चिड़ियोंपर
जब चाहे मश्क़े-नाज़ करें

पानीमें आज़ादी है
घड़ियालों और निहंगोंको
जैसे चाहें पालें पोसें
अपनी तुन्द उमंगोंको

इन्सानने भी शोख़ी सीखी
वहशतके इन रंगोंसे
शेरों, साँपों, शाहीनों,
घड़ियालों और निहंगोंसे

इन्साँ भी कुछ शेर हैं
बाक़ी भेड़ोंकी आबादी है
भेड़ें सब पाबन्द हैं
लेकिन शेरोंको आज़ादी है

शेरके आगे भेड़ें क्या हैं,
इक मन-भाता खाजा है,
बाक़ी सारी दुनिया परजा
शेर अकेला राजा है,

भेड़ें ला-तादाद हैं लेकिन—
सबको जानके लाले हैं,
उनको यह तालीम मिली है,
भेड़िए ताक़तवाले हैं,

मास भी खायें खाल भी नोचें
हर दम लागू जानोंके
भेड़ें काटें दौरे - ग़ुलामी
बलपर गल्ला बानोंके

शेर हैं दावेदार कि हमसे
अम्न है इस आबादीका
भेड़ें जब तक शेर न बन लें
नाम न लें आज़ादीका

इन्सानोंमें साँप बहुत हैं,
क़ातिल भी ज़हरीले भी
इनसे बचना मुश्किल है,
आज़ाद भी, हैं फ़ुर्तीले भी

साँप तो बनना मुश्किल है,
इस ख़सलतसे मअज़ूर हैं हम
मंतर जानने वालोंकी
मुहताजीपर मजबूर हैं हम

शाहीं भी हैं, चिड़िया भी हैं,
इन्सानोंकी बस्तीमें
उनको नाज़ बुलन्दीपर
यह नालाँ अपनी पस्तीमें

शाहींको तादीब करो
या चिड़ियोंको शाहीं करो
यूँ इस बाग़े - आलममें
आज़ादीकी तलक़ीन करो

बहरे-जहाँमें ज़ाहिरो-पिन्हाँ
इन्सानी घड़ियाल भी हैं
तालिबे-जानो-जिस्म भी हैं
शैदाए जाहो-माल भी हैं,

पेट फटे पड़ते हैं इनके
यह मुँह फाड़े बैठे हैं,
हर बाज़ारमें, हर मंडीमें
झण्डे गाड़े बैठे हैं,

इनकी हस्तीसे बस्ती है,
बस्ती क़बरिस्तानोंकी
इनकी तोंदें क़ब्रें हैं
इन्सानोंके अरमानोंकी

यह इन्सानी हस्तीको
सोनेकी मछली जानते हैं
मछलीमें भी जान है लेकिन
ज़ालिम कब गरदानते हैं,

मज़दूरीका तज़किरा छोड़ो
सरमायेका ज़िक्र करो
ख़ूनकी इक-इक बूँद निचोड़ो
इनके पेटकी फ़िक्र करो

जायें कहाँ हर सिम्त खुले हैं,
मुँह सरमायादारोंके
इनके मुँहमें दाँत नहीं
फल हैं ख़ूनी तलवारोंके

खा जानेका कौन-सा गुर है
जो इन सबको याद नहीं
जबतक इनको आज़ादी है,
कोई भी आज़ाद नहीं

झूटा सब संसार

प्यारे
झूटा सब संसार
मोहका दरिया लोभकी नैया
कामी खेवनहार
मौजके बलपर चल निकले थे
आज फँसे मजधार
प्यारे
झूटा सब संसार

झूटा सब संसार
प्यारे
झूटा सब संसार
तनके उजले मनके मैले
धनकी धुन सवार
ऊपर - ऊपर राह बतायें
अन्दरसे बटमार
प्यारे
झूटा सब संसार

झूटा सब संसार
प्यारे
झूटा सब संसार
चोले धारें दीन धरमसे
निकलें चोर चिकार
इन चोलोंकी आड़में चमके
दोधारी तरवार
प्यारे
झूटा सब संसार

झूटा सब संसार
प्यारे
झूटा सब संसार
ज्ञान धरमके पत्तर बाचें
बेचें सुरग उधार
ज्ञानी पातर बनके नाचें
नक़्द करें व्योपार
प्यारे
झूटा सब संसार

ब-.जेरे-शाखे.-गुल

मदाम सैरे-गुलिस्ताँ रहे तेरा मामूल
क़दम-क़दमपै निछावर बहारे-ऐशके फूल
गुलोंके सायेमें हैं, बुलबुलोंके मदफ़न भी
किसी चमनसे भी गुज़रे दुआए-ख़ैर न भूल

झूटी-बसन्त

क़फ़सके राहत पसन्द पंछी, मज़ेमें हैं, चहचहा रहे हैं,
चमन पै आतिश बरस रही है,
बसन्तके गीत गा रहे हैं,
उठे हैं सैय्याद लेके फन्दे, क़दम-क़दमपर बिछा रहे हैं,
ख़िज़ाँ रसीदा चमनमें शायद
बहारके दिन फिर आ रहे हैं,
लगाके आग इस चमनके माली, जला चुके फूल पात डाली
बहारके अब हफ़ीज़ ख़याली पुलाव बैठे पका रहे हैं,
हवाके यह सर्द-सर्द झोंके
यह गर्म-गर्म अश्क बुलबुलोंके
लगी हुईको बुझा रहे हैं, बुझी हुईको जगा रहे हैं
दबी हुई हसरतोंमें शायद
कहीं-कहीं आग लग गई है,
गिरी हुई पत्तियोंके तोदे धुएँके बादल उठा रहे हैं,
'हफ़ीज़' साहबसे कोई कह दे
ख़िज़ाँकी सख़्तीको भूल जाएँ
तराने गायें, ग़ज़ल सुनायें, जली-कटी क्यों सुना रहे हैं ?

गर्मी

–१० में-से २–

जब आग - बगोले नाचेंगे
सब लँगड़े - लूले नाचेंगे
गरदाबे-बला बन जायेंगे
रौंदी हुई मिट्टीके ज़र्रे
तूफ़ान बपा बन जायेंगे
सहरा-दरिया बन जायेंगे
अब ख़ूब हँसेगा दीवाना

हर ज़ुल्फ़से बिच्छू लपकेंगे
आँखोंके शरारे लपकेंगे
सैय्यादों-हुस्न शिकारोंपर
फूटेगा पसीना ग़ुस्सेका
मोती बनकर रुख़सारोंपर
इस धूपमें चाँद-सितारोंपर
अब ख़ूब हँसेगा दीवाना

सर्दी

–६ में-से २–

भुस ख़ाली पेटमें भर न सकेगा
कोई तिजारत कर न सकेगा
सुकड़ी - सुकड़ी खालोंकी
अब मढ़ भी जाये तो बज न सकेगी
नौबत पैसे वालोंकी
बेकारीपर दल्लालोंकी
अब ख़ूब हँसेगा दीवाना

अब गाढ़ा पसीना बुननेवाले
ओढ़े फिरेंगे शाल - दुशाले
मुफ़्त न झूलें झूलेंगी
फूले हुए गाल अब पिचकेंगे,
पिचकी हुई तोंदें फूलेंगी
सब अक़्लें चौकड़ी भूलेंगी
अब ख़ूब हँसेगा दीवाना

किधर जाता है दीवाने

–६ में-से २–

बहुत-से दिल हैं, जिनमें कोई करवट है न अँगड़ाई
बहुत आँखें हैं अबतक जिनमें बीनाई नहीं आई
यह लातादाद फ़रज़ाने हैं, ग़ैर आबाद वीराने !
बहुत-सा काम बाक़ी है, किधर जाता है दीवाने !

दर्शन-दर्शन मेरा

बस
दर्शन - दर्शन मेरा,
माली लाख करे रखवाली
भँवरा गूँजे डाली - डाली
फूल - फूल पर डेरा
बस
दर्शन - दर्शन मेरा
हर कोई है क़ैद क़फ़समें,
बुलबुल रंगमें, मक्खी रसमें
अपना मन है अपने बसमें
जोगी वाला फेरा
बस
दर्शन - दर्शन मेरा

ख़ूनके चिराग़

– ३० में-से ७ –

थे ग़ुलामीसे तुम्हारी ही तरह बेज़ार हम
जंगे-आज़ादीके थे पहले अलम बरदार हम
था परे परवाज़ अपना भी कभी अफ़लाकपर
आज हम क़ब्रोंमें हैं, सोते हैं, फ़र्शे-ख़ाकपर

जिस्म हैं सोये हुए जानें मगर बेदार हैं,
इश्तराके - अहले - हिम्मतके लिए तैयार हैं,
मार्क्स आराओ ! हाँ, आगे बढ़ो, बढ़ते चलो
ग़ासिबोंपर तुन्द शेरोंकी तरह चढ़ते चलो
अब तुम्हारे हाथ इस आग़ाज़का अंजाम है,
हम यहाँ काम आ गये, आगे तुम्हारा काम है
लालारू यह तुरबतें, यह सीना हाए दाग़-दाग़
हमने अपने ख़ूनसे रोशन किये हैं यह चिराग़
सर - फ़रोशो ! इन चिराग़ोंसे ज़िया लेते हुए
आगे - और आगे बढ़ो, नामे-ख़ुदा लेते हुए

ग़ज़लोंके चुने हुए शेर

मंज़ूर-मंज़ूर ऐ अहले दुनिया !
अल्लाह मेरा, बाक़ी तुम्हारा
हाज़िर हूँ मैं भी हाज़िर है दिल भी
दिल भी तुम्हारा, मैं भी तुम्हारा
यूँ मैंने जीती उल्फ़तकी बाज़ी
इक बार खेला, सौ बार हारा
यह नाख़ुदा[1] है, ऐ अहले-कश्ती !
शायद किसी वक़्त करले किनारा[2]
उफ़ू[3]-ओ-ख़तामें ज़िद हो गई थी
वह भी न हारे मैं भी न हारा,

---

१. मल्लाह-केवट, २. धोका दे जाये, मुँह फेरले, ३. ख़ुदाकी रहमतमें, ईश्वरकी दयालुतामें ।

नहीं सवाबकी[1] पाबन्द बन्दगी मेरी
यह इक नशा है जो आलूदए-शराब[2] नहीं
मुझे ज़लील न कर उज़्रे-लनतरानीसे
यह अहले-ज़ौक़की तौहीन है जवाब नहीं
उसीकी शर्म है मेरी निगाहका पर्दा
वह बे-हिजाब सही मैं तो बे-हिजाब नहीं

हम ही में थी न कोई बात याद न तुमको आ सके
तुमने हमें भुला दिया हम न तुम्हें भुला सके
होशमें आ चुके थे हम, जोशमें आ चुके थे हम
बज़्मका[3] रंग देखकर सर न मगर उठा सके
अहले-ज़बाँ तो हैं बहुत, कोई नहीं है अहले - दिल
कौन तेरी तरह 'हफ़ीज़' दर्दके गीत गा सके

आख़िर कोई सूरत तो बने ख़ानए-दिलकी
काबा नहीं बनता है तो बुतख़ाना बना दे
करता है तसव्वुर[4] तेरा इस रंगकी बातें
सुन ले कोई इक हर्फ़ तो अफ़साना[5] बना दे
दीवानगीए-इश्क़के बाद आ ही गया होश
और होश भी वह होश कि दीवाना बना दे

---

१. पुण्य कर्मकी, २. मदिरासे भीगा हुआ, सुरापान-जैसा उतर जानेवाला क्षणिक नशा ३. महफ़िलका, ४. चिन्तन, ५. कहानी।

फ़िरदौसकी तहूर[1] भी आख़िर शराब है,
मुझको न ले चलो मेरी नीयत ख़राब है,

इश्क़ न हो तो दिल्लगी, मौत न हो तो ख़ुदकशी[2]
यह न करे तो आदमी आख़िरे-कार क्या करे ?
अपने किये पै बार-बार कौन हो रोज़ शर्मसार
मिल गया उम्रे-पाएदार क़ौलो-क़रार क्या करे

तू मेरे हालका ख़याल न कर
इसमें भी एक शान है प्यारे !
तल्ख़ कर दी है, ज़िन्दगी जिसने
कितनी मीठी ज़बान है प्यारे !
हम हैं बन्दे, मगर तेरे बन्दे
यह हमारी भी शान है प्यारे !
कब किया मैंने इश्क़का दावा ?
तेरा अपना गुमान है प्यारे !
मैं तुझे बेवफ़ा नहीं कहता
दुश्मनोंका बयान है प्यारे !
सारी दुनियाको है ग़लतफ़हमी
मुझपै तू महरबान है प्यारे !
तेरे कूचेमें है सकूँ वरना
हर ज़मीं आसमान है प्यारे !

---

१. जन्नतकी मदिरा, २. आत्म-हत्या ।

ख़ैर फ़रियाद बे असर ही सही
ज़िन्दगीका निशान है प्यारे !
शर्म है, एहतराज़ है, क्या है
पर्दा-सा दरमियान है प्यारे !
अर्ज़े-मतलब समझके हो न ख़फ़ा
यह तो एक दास्तान है प्यारे !

हाँ मेरे मजरूह[1] तबस्सुम[2] ख़ुश्क लबों तक आता जा
फूलकी हस्तो-बूद[3] यही है खिलता जा, मुर्झाता जा

ज़ौक़े-निगाहके[4] सिवा, शौक़े-गुनाहके[5] सिवा
मुझको बुतोंसे क्या मिला, मुझको ख़ुदाने क्या दिया ?
हुस्ने-नज़रकी आबरू[6] सनअ़ते-बरहमनसे[7] है,
जिसको सनम[8] बना लिया उसको ख़ुदा बना दिया

मेरी यह ज़िन्दगी है कि मरना पड़ा मुझे
इक और ज़िन्दगीकी तमन्ना लिये हुए
पेशे-ख़ुदा चला हूँ फ़रिश्ते हैं साथ-साथ
साग़र लिये हुए कोई मीना लिये हुए

अपने ही दिलको मार लिया मार-मारके
देखे तो कोई जब्र मेरे इख़्तियारके

१. घायल, २. मुसकान, ३. अस्ति-नास्ति, सत्ता-असत्ता, ४. देखनेके शौक़के, ५. अपराध करनेकी इच्छाके, ६. सुरुचिपूर्ण नेत्रोंकी प्रतिष्ठा, ७. पुजारीपर अवलम्बित, ८. प्रेम-पात्र ।

भुलाई नहीं जा सकेंगी यह बातें
तुम्हें याद आयेंगे हम, याद रखना

मेरी कोई ख़ता नहीं. मुझपर ख़फ़ा न हो
उस बुतको देख दावरे-महशर[1] ! ख़फ़ा न हो
चाहूँ तो अब भी जानिबे-मंज़िल पलट चलूँ
गुमराह इसलिए हूँ कि रहबर[2] ख़फ़ा न हो
नालेको ज़ब्त करते हुए दम उलझ गया
कोशिश यह थी कि अब मुक़र्रर[3] ख़फ़ा न हो

हर क़दम जिसको नई चाल न चलना आये
वह तो रहज़न[4] भी नहीं, राहनुमा[5] क्या होगा ?
कोई भी अब तो ठहरता नहीं मेआरे-नज़र[6]
आदमी शाने-ख़ुदा है, तो ख़ुदा क्या होगा ?

लुटाते हैं ईमान शेख़ो-बरहमन
बड़ी रौनकों पर हैं दोनों दुकानें
जवानी गई, फिर भी हम और नासेह
जहाँ मिल गये छिड़ गईं दास्तानें

कोई बात है कि चुप हूँ तुझे कामराँ[7] समझकर
मुझे बेज़बाँ समझकर न दिखा ज़बाँ-दराज़ी[8]
यह महाल[9] तो नहीं था मेरे दोस्त-दोस्त रहते
मगर ऐ 'हफ़ीज़' मुझसे न हुई ज़माना साज़ी

१. न्यायाधीश, ख़ुदा, २. पथ-प्रदर्शक, ३. पुनः, दुबारा, ४. लुटेरा, ५. मार्ग-दर्शक, ६. नज़रोंमें, ७. सफल, कामयाब, ८. मुँहफटपन, बढ़-चढ़कर बातें न कर, ९. मुश्किल।

ख़ुदा नाज़िर[1] था अपना और हाज़िर थी ख़ुदी[2] अपनी
मगर बन्देके दरपर झुक रही थी बन्दगी अपनी
जहाने-दर्द[3] आख़िर ले लिया इक दिलके बदलेमें
इसी सौदेमें[4] सौदाईने[5] पाई बेहतरी[6] अपनी

आनेवाले किसी तूफ़ानका रोना रोकर
नाख़ुदाने[7] मुझे साहिलपै[8] डुबोना चाहा

क्या नाख़ुदा बग़ैर कोई डूबता नहीं
मुझको मेरे ख़ुदासे पशेमाँ[9] न कीजिए

नाकामिए - इश्क़[10] या कामयाबी
दोनोंका हासिल ख़ाना - ख़राबी[11]

जहाँ क़तरेको तरसाया गया हूँ
वहीं डूबा हुआ पाया गया हूँ
बला[12] काफ़ी न थी इक ज़िन्दगीकी
दुबारा याद फ़रमाया गया हूँ
सुपुर्दे-ख़ाक[13] ही करना है मुझको
तो फिर काहेको नहलाया गया हूँ
अगर्चे अब्रे - गौहरबार[14] हूँ मैं
मगर आँखोंसे बरसाया गया हूँ

---

१. देखनेवाला, २. अहंमन्यता, ३. विश्व-वेदना, ४. व्यापारमें, लेन-देनमें, ५. पागलने, ६. भलाई, ७. नाविकने, ८. किनारेपै, ९. शर्मिन्दा, १०. प्रेमकी असफलता, ११. बर्बादी, १२. मुसीबतें, १३. क़ब्रमें उतारना है, मिट्टीमें मिलाना है, १४. मोतीका पानी !

'हफ़ीज़' अह्ले-ज़बाँ कब मानते थे
बड़े ज़ोरोंसे मनवाया गया हूँ

वफ़ा जिससे की बेवफ़ा हो गया
जिसे बुत बनाया ख़ुदा हो गया
वह इतना न समझे यह क्या हो गया
फ़िदा[1] होनेवाला फ़िदा हो गया
हवासे उलझता रहा नाख़ुदा
सफ़ीना[2] सुपुर्दे-ख़ुदा[3] हो गया
यहाँ हम दुआएँ ही करते रहे
वहाँ उसने जो कह दिया हो गया
बुतोंको तो ख़ैर इक शिकायत भी थी
ख़ुदा मुफ़्तमें क्यों ख़फ़ा हो गया ?

वफ़ाका लाज़मी था यह नतीजा
सज़ा अपने कियेकी पा रहा हूँ
नये काबेकी बुनियादोंसे पूछो
पुराने बुतकदे क्यों ढा रहा हूँ
नहीं काँटें भी क्या उजड़े चमनमें
कोई रोके मुझे मैं जा रहा हूँ
'हफ़ीज़' अपने-पराये बन रहे हैं,
कि मैं दिलको ज़बाँ पर ला रहा हूँ

---

१. अनुरक्त, आसक्त, २. नौका, ३, खुदाके सुपुर्द, यानी डूब गया।

ऐ मेरे आक़ा[1] मुबर्रह ! अज़ख़ता[2] तू है कि मैं ?
बख़्श देना काम किसका है, ख़ुदा तू है कि मैं !
मंज़िले-मक़सद[3] नहीं मिलती तो अब मैं क्या करूँ ?
राह तेरी है कि मेरी, रहनुमा[4] तू है कि मैं ?

क्या जानिए यह क्या खोयेगा, क्या जाने यह क्या पायेगा
मन्दिरका पुजारी जागता है, मस्जिदका नमाज़ी सोता है,

हुस्न पाबन्दे-रज़ा[5] हो मुझे मंज़ूर नहीं
मैं कहूँ तुम मुझे चाहो मुझे मंज़ूर नहीं
जिसने इस दौरके इन्सान किये हैं पैदा
वही मेरा भी ख़ुदा हो मुझे मंज़ूर नहीं
शर्तें-इज़हारे-नदामत है, जो बख़शिशके लिए
ऐ जवानीके गुनाहो ! मुझे मंज़ूर नहीं
हश्रके दिन मुझे सच कहनेकी तौफ़ीक़[6] न दे,
कोई हंगामा[7] बपा हो मुझे मंज़ूर नहीं
हुस्नवाले मेरे क़ातिल हैं यह दावा है मेरा
हुस्नवालोंको सज़ा हो मुझे मंज़ूर नहीं
दोस्तोंको भी मिले दर्दकी दौलत यारब !
मेरा अपना ही भला हो मुझे मंज़ूर नहीं

---

१. पवित्र ईश्वर, पाक ख़ुदा, २. अपराधी, ३. अभिलषित स्थान, ४. पथ-प्रदर्शक, ५. आदेशके बन्धनमें, ६. साहस, ७. झगड़ा-फ़िसाद ।

मुझको ऐ कातिबे-तक़दीर[1] ! तमाशा न बना
इश्क़ चहरे पै लिखा हो मुझे मंज़ूर नहीं
ऐ बुतो ! तुम पै अधाधुन्द मरे ख़ल्क़े-ख़ुदा[2]
और ख़ुदा देख रहा हो मुझे मंज़ूर नहीं
मैकदा वालोंकी ख़फ़गी ! अरे तौबा-तौबा
कोई ख़ुश हो कि ख़फ़ा हो, मुझे मंज़ूर नहीं,

ख़ुदा रक्खे हमारे नाख़ुदा हैं मौजके बन्दे
जहाँ ख़ुद डूबना चाहें, वही साहिल समझते हैं,
वफ़ाके मसलएमें कह गये इक हर्फ़े-हक़[3] हम भी
हमारे दोस्त हमको दारके[4] क़ाबिल समझते हैं,

न तोड़ो दोस्तो रिश्ता वफ़ाका
मैं दिलके ज़ख़्म सीना चाहता हूँ
अभी बाक़ी है मीयादे-मुसीबत
अभी कुछ और जीना चाहता हूँ

मेरा मिज़ाज पूछते हो बार-बार क्या
अपनी निगाहपर भी नहीं इख़्तियार क्या
अब साज़गार क्या, मुझे ना साज़गार क्या
मैं चोबे-ख़ुश्क हूँ, ख़िज़ा क्या, बहार क्या ?

---

१. भाग्य-लेखक, २. जनता ३. सत्य बात, ४. सूली चढ़ाने योग्य ।

मेरी आँखोंको नूर मिले न मिले
मेरे दिलको सरूर मिले न मिले,
मगर इतना ग़रूर ज़रूर मिले
कि झुके मेरी लोहे-जबीं न कहीं
मुझे दामे-वफ़ामें फँसाके रखो
तहे दामने-लुत्फ़ छुपाके रखो
मेरे इश्क़की हो न किसीको ख़बर
मुझे देखले कोई हसीं न कहीं

१ सितम्बर १९५८ ई०]

अनुक्रमणिका

शेरो-शाइरी, शेरो-सुखन पाँचों भागोंमें और शाइरीके नये दौरके दो भागोंमें उल्लिखित शाइरोंकी वर्णानुक्रम-सूची

	शेरो-शाइरी	शेरो-सुखन		शाइरीके नये दौर
नाम शाइर	पृष्ठ	भाग	पृष्ठ	पृष्ठ
[अ]				
अकबर	२६४			
अक़्बर हैदरी		चौथा	२१५	
अख़्तर		पहला	२८०	
अख़्तर वाजिद अलीशाह		पहला	३७०	
अख़्तर शीरानी	५०३			
अख़्तर हरीचन्द				दूसरा १४३
अज़ीज़ लखनवी		दूसरा	२८७	
अनवर		पहला	६६६	
अफ़सोस		पहला	१७६	
अब्दुल्ला क़ुतुबशाह		पहला	५४	
अब्दुलहसन तानाशाह		पहला	५४	
अमजद अलीशाह		पहला	३६६	
अमजद हैदराबादी		तीसरा	२६५	
अम्न लखनवी				दूसरा १३२
अमानत		पहला	५५६	
अमीर मीनाई	२४२	पहला	५६७	
अलम मुज़फ़्फ़रनगरी		चौथा	१६६	
अर्श मलसियानी	५१२			

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	शेरो-सुख़न पृष्ठ	शाइरीके नये दौर पृष्ठ
असग़र गोण्डवी	५६६	तीसरा	१२४	
असर देहलवी		पहला	१४६	
असर लखनवी		दूसरा	६०	
		चौथा	२५३	
असीर		पहला	५५७	
अहसन		पहला	८०	
अहसन मारहरवी		चौथा	१५५	
अहसान बिन दानिश	४१७			
[आ]				
आग़ा शाइर किज़िलबाश		चौथा	११८	
आज़ाद	२७०	पहला	६३२	
आज़ाद अंसारी		तीसरा	२४०	
आज़ुर्दा		पहला	५५६	
आज़ू देहलवी		पहला	७१	
आज़ू लखनवी		दूसरा	२४७	
आतिश		पहला	३११	
आबाद		पहला	३२६	
आलम महल		पहला	३७६	
आसफ़, आसफ़ुद्दौला नवाब		पहला	३६०	
आसी ग़ाज़ीपुरी		तीसरा	२१६	
आसी उदनी		चौथा	१८६	
[इ]				
इक़बाल	३०७			
इब्राहिम आदिलशाह		पहला	३५	

	शेरो-शाइरी	शेरो-सुखन		शाइरीके नये दौर
नाम शाइर	पृष्ठ	भाग	पृष्ठ	पृष्ठ
इंशा		पहला	२०४	
इशरत महल		पहला	३७७	
[उ]				
उमराव महल		पहला	३७३	
उम्मीद उमेठवी		दूसरा	२७२	
[क]				
क़ायम चान्दपुरी		पहला	१३६	
क़ल्क़		पहला	५६०	
कैफ़ी दत्तात्रय		तीसरा	२३०	
[ख]				
खलील		पहला	३५८	
[ग]				
ग़ाज़ीउद्दीन हैदर		पहला	३६६	
ग़ालिब	२०६	पहला	४६९	
[च]				
चकबस्त	३४७			
[ज]				
ज़की महदीअलीख़ाँ		पहला	५६१	
ज़की मुहम्मद ज़करियाखाँ		पहला	७४४	
ज़ौक़	१९३	पहला	३८८	
जज़्बी	५५१			
ज़फ़र		पहला	६१९	
ज़हीर		पहला	६६७	
जलील मानकपुरी		दूसरा	२११	
जलाल लखनवी		पहला	५९३	

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ	शाइरीके नये दौर पृष्ठ
जिगर मुरादाबादी	६०२	तीसरा	१५१	
ज़िया		पहला	१६६	
जुरअत		पहला	२११	
जावेद रामपुरी		पहला	६१६	
जोश मलीहाबादी	३७६			पहला दौर पूर्ण
जोश मलसियानी		चौथा	६५	
[त]				
तसकीन		पहला	७०८	
तसलीम		पहला	५६३	
ताजवर नजीबाबादा		चौथा	२२०	
ताबाँ		पहला	१५५	
[द]				
दर्द	१६७	पहला	१२५	
दरख़्शाँ		पहला	५६२	
दाऊद		पहला	५६	
दाग़	२५३	पहला	६३५	
		चौथा	११	
दिल शाहजहाँपुरी		दूसरा	१४६	
दीदम बेगम		पहला	३७८	
[न]				
नज़र लखनवी		दूसरा	३०१	
नज़्म तबातबाई		दूसरा	३१७	
नज़ीर	१७७			
नसीम दयाशंकर		पहला	३३६	
नसीम असग़रअलीख़ाँ		पहला	७०६	

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ	शाइरीके नये दौर पृष्ठ
नसीम भरतपुरी		चौथा	१६०	
नसीर		पहला	३८२	
नसीरुद्दीन हैदर		पहला	३६८	
नाज़ी		पहला	७६	
नातिक़ लखनवी		दूसरा	३१०	
नातिक़ गुलावठी		चौथा	१०५	
नासिख़		पहला	२६१	
निज़ाम रामपुरी		पहला	६०६	
नूह नारवी		चौथा	१४६	
[फ]				
फ़ाइज़		पहला	६६	
फ़ातिमा बेगम		पहला	३०७	
फ़ानी बदायूनी	५६०	तीसरा	१०१	
फ़िराक़		पहला	१८२	
फ़िराक़ गोरखपुरी	६०७			दूसरा ६७
फ़ुग़ाँ		पहला	८१	
फ़ैज़	५३२			
[ब]				
बर्क़ लखनवी		पहला	३२६	
बर्क़ देहलवी	४३२			
बदर आलम		पहला	३७४	
बयान		पहला	१७५	
बहर		पहला	३२८	
बेख़ुद देहलवी		चौथा	१२७	

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	शेरो-सुख़न पृष्ठ	शाइरीके नये दौर पृष्ठ
बेख़ुद बदायूनी		चौथा	१४६	
बेदार		पहला	११६	
[म]				
मज़हर		पहला	७२	
मज़मून		पहला	७६	
मजरूह		पहला	७४३	
मजाज़	५४०			
ममनून		पहला	५५४	
महबूब महल		पहला	३७८	
महर		पहला	३३२	
महरूम तिलोकचन्द		चौथा	२२४	
मीर	१५३	पहला	१०७	
मुनव्वर लखनवी				दूसरा ११३
मुनीर		पहला	३३३	
मुल्ला, आनन्दनारायण				दूसरा ३३
मुसहफ़ी		पहला	१८४	
मुहम्मद अलीशाह		पहला	३६६	
मुहम्मदअली कुतुबशाह		पहला	५३	
मुहम्मद कुतुबशाह		पहला	५४	
मोमिन	२३३	पहला	४२४	
[य]				
यकरंग		पहला	८०	
यक़ीन		पहला	१६३	
यगाना चंगेज़ी		तीसरा	१८८	
[र]				
रख़शाँ		पहला	७४५	
रश्क		पहला	३३१	

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ	शाइरीके नये दौर पृष्ठ
रश्क महल		पहला	३७४	
रंगीन		पहला	२३५	
रासिख़		पहला	२२०	
रिन्द		पहला	३३५	
रियाज़ ख़ैराबादी		दूसरा	१०४	
[ल]				
लुत्फ़		पहला	१७७	
[व]				
वज़ीर		पहला	३३०	
वज़ीर अलीख़ाँ		पहला	३६४	
वली		पहला	५६	
वहशत कलकत्वी		तीसरा	२५०	
[श]				
शरफ़		पहला	३५६	
शहीद		पहला	२२४	
शाद अज़ीमाबादी		तीसरा	१७	
शेफ़्ता		पहला	७००	
शैदा बेगम		पहला	३७५	
शौक़ रैना		दूसरा	२४१	
[स]				
सआदत अलीख़ाँ		पहला	३६५	
सदर महल		पहला	३७६	
सफ़ी लखनवी		दूसरा	२७९	
सबा		पहला	३५९	
सरशार लखनवी		दूसरा	२३७	

नाम शाइर	शेरो-शाइरी पृष्ठ	शेरो-सुख़न भाग	पृष्ठ	शाइरीके नये दौर पृष्ठ
साइल देहलवी		चौथा	१०६	
साक़िब लखनवी	५७६	दूसरा	१६	
साग़र निज़ामी	४७६			
सालिक-कुरबानअली		पहला	७११	
साहिर लुधियानवी	५५७			
साहिर अमरनाथ		तीसरा	२२५	
सिराज़		पहला	६०	
सीमाब अकबराबादी	४०५	चौथा	३३	
सोज़		पहला	१२०	
सौदा		पहला	१०२	
[ह]				
हफ़ीज़ जालन्धरी	४५६			दूसरा १७१
हफ़ीज़ जौनपुरी		दूसरा	२२६	
हविस		पहला	२२३	
हसन देहलवी		पहला	१७०	
हसन बरेलवी		चौथा	१६५	
हसरत		पहला	१७८	
हसरत मोहानी	५८४	तीसरा	६४	
हातिम		पहला	७४	
हाली	२७४	पहला	७१२	
हिजाब बेगम		पहला	३७६	
हिदायत		पहला	१८१	
हूर बेगम		पहला	३७५	
हैदरी बेगम		पहला	३७७	

विषयानुक्रमणिका

शेरो-शाइरी और शेरो-सुख़नके पाँचो भागोंमें जिन महत्त्वपूर्ण-आवश्यक विषयोंपर विवेचन हुआ है, उनकी संक्षिप्त सूची यहाँ दी जा रही है। इस सूचीके अतिरिक्त बहुत-से उपयोगी अंगोंपर शाइरोंके परिचय एवं कलाममें जो व्याख्याएँ की गई हैं, उनकी सूची विस्तार भयसे यहाँ नहीं दी जा रही है। वह पुस्तकके प्रारम्भमें विषय-सूचीमें देखी जा सकती है।

शेरो-शाइरी

	पृष्ठ
१. उर्दू-शाइरीका परिचय	४६— ६७
२. भ्रामक शब्द	६८— ७४
३. उर्दू-शाइरीका मर्म	७५—१४६
४. उर्दू-शाइरीका विकास	१४७—१५२
५. उर्दू-शाइरीमें अभूतपूर्व परिवर्तन	२६१—२६७
६. राजनीतिक चेतना	२७१—३७५
७. उर्दू-शाइरीमें नया मोड़	४५१—४५५
८. प्रगतिशील युग	५१७—५३१
९. ग़ज़लके समर्थ शाइर	५६९—५७५

शेरो-सुख़न

भाग पहला

	पृ० सं०
१. उर्दू-शाइरीपर एक नज़र	१६— ५०
२. प्रारम्भिक युगीन और वर्त्तमान युगीन उर्दू	६४— ६५
३. मध्यवर्त्ती युगपर सिंहावलोकन	८५—१०१
४. अर्वाचीन युगपर सिंहावलोकन	२३५—२७६
५. ग़ज़ल	२३५—२४२
६. शाइरीपर वातावरण और व्यक्तित्वका प्रभाव	२४२—२४८
७. देहलवी लखनवी शाइरीमें अन्तर	२४८—२७४
८. नासिख़ और आतिश	२७४—२७६
९. बादशाह और नवाब शाइर	७४६—७५४

भाग पाँचवाँ

१०. ग़ज़लका लफ़्ज़, अर्थ, आदि	१६— २६
११. पाक़-नापाक़ इश्क़	२६— ४६
१२. देहलवी-लखनवी शाइरी	४६— ५६
१३. दाख़िली-ख़ारज़ी शाइरी	५६— ६४
१४. ग़ज़लकी मुख़ालफ़त	६५— ८६
१५. ग़ज़लका कायाकल्प	८६— ६६
१६. शाइरीमें परिवर्त्तनके कारण	६६—१०२
१७. नज़्म और ग़ज़ल	१०२—१०४
१८. ग़ज़लका मर्म और रूपक	१०५
१९. गुलो-बुलबुल	१०५—११५
२०. हुस्नो-इश्क़	११५—११८
२१. रंगे-तग़ज़्ज़ुल	११८—१२५
२२. नई ग़ज़लगोई	१२५—१२६
२३. पाक इश्क़	१२६—१५८
२४. सामयिक घटनाएँ	१५८—१७०
२५. मुशाअ़रा	१७१—२०६

लेखककी अन्य रचनाएँ

उर्दू-शाइरी और उसका इतिहास

उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

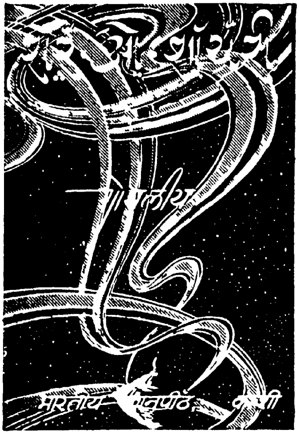

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन—

"यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। गोयलीयजी-जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू-छन्द और कविताका चतुर्मुखीन परिचय कराया। संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गंभीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ सं० ६४० ● मूल्य आठ रु०

डॉ० अमरनाथ झा—

"गोयलीयजीने बड़े परिश्रमसे इस पुस्तकको लिखा है। इसमें सभी प्रमुख कवियोंका उल्लेख है, उनके जीवनकी मुख्य बातें लिख दी गयी हैं; जिस वातावरणमें उन्होंने कविता लिखी, उसका वर्णन है। उनके काव्य-गुरु और शिष्योंके नाम बताये गये हैं। उनकी रचनाओंके गुण-दोष उदाहरणोंके साथ वर्णन किये गये हैं। इसके पढ़नेसे उर्दू कविताका पूरा परिचय मिलता है।" **● प्रथम भाग**

पृ० सं० ७८४ ● मूल्य आठ रु०

सूक्तिरूपमें मौलिक कहानियाँ

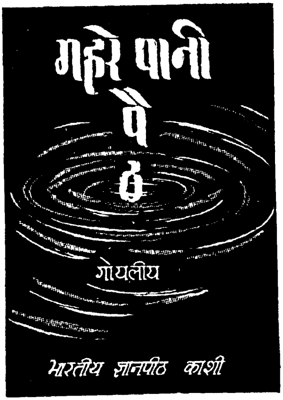

आज दैनिक–

"ये कहानियाँ चरित्रनिर्माण तथा अतीतके अनुभवोंसे हमें लाभान्वित करती हैं। 'गहरे पानी पैठ' में श्री गोयलीयने जिन रत्नोंको हिन्दी-संसारमें सुलभ किया है, निश्चय ही उनसे हमारा जीवन सुखी और सम्पन्न हो सकता है। लेखनशैलीमें प्रभावोत्पादकता और मार्मिकता है। पुस्तक मननीय और संग्रह योग्य है।"

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ सं० २२४ ● मूल्य ढाई रुपये

विशालभारत–

"प्रस्तुत पुस्तकमें जीवन-निर्माण एवं उत्साह, प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान करनेवाली १०२ लघु कथाएँ हैं। इनका स्वरूप लघु है, पर ज्ञानगुम्फनकी दृष्टिसे सागर जैसी प्रौढ़ता, विशालता तथा विस्तार है।"

नवभारतटाइम्स दिल्ली–

'जिन खोजा तिन पाइयाँ' को यदि हिन्दीका हितोपदेश कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वही अनुभव, वही ज्ञान, वही विवेक।

द्वितीय संस्करण

पृ० सं० २१८ ● मूल्य ढाई रुपये

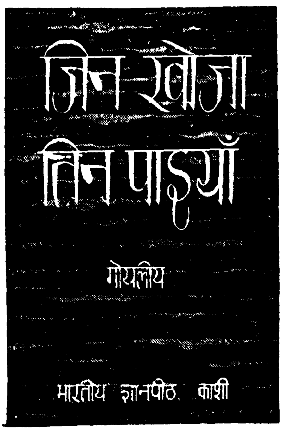

कहानियाँ • संस्मरण एवं परिचय

उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत

युगचेतना—

गोयलीयजीकी लघु-कथाओंकी विशेषता यही है कि वे अपने आपमें तीखी मार्मिकता लिये हुए हैं। उनसे जहाँ एक ओर पाठकका ज्ञान वर्धन होता है, वहाँ दूसरी ओर वे शिक्षाप्रद और मनोरंजक भी होती हैं। उनकी भाषाशैली बहुत सरल और रोचक है। मौलिकता इनकी सबसे बड़ी विशेषता है मुहावरेदार भाषा और रोचक शैलीने मिलकर इन्हें बहुत महत्वपूर्ण बना दिया है। ये सभी कहानियाँ रोमांचित कर देनेवाली हैं।

सचित्र

पृष्ठ सं० १४८ • मूल्य ढाई रुपये

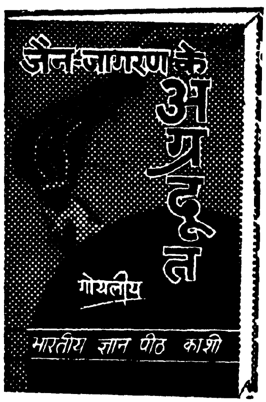

१९०१ से १९५२ तकके २९ दिवंगत और आठ वयोवृद्ध प्रमुख दि० जैन कार्यकर्ताओंके संस्मरण एवं सचित्र परिचय।

जैन-सन्देश मथुरा—

"प्रत्येक परिचय कहानीसे कम रोचक नहीं है।"

राष्ट्रभारती—

"प्रकाशन बहुत ही सुन्दर है। गेट-अप बहुत आकर्षक है।"

पृष्ठ सं० ६२० • मूल्य पाँच रुपये

ख्यातिप्राप्त लेखकोंके ग्रन्थ

उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

कालिदासका भारत [भाग १]	४)
कालिदासका भारत [भाग २]	४)
चौलुक्य कुमारपाल	४)
खण्डहरोंका वैभव	६)
खोजकी पगडण्डियाँ	४)
शेरो-शाइरी	८)
शेर-ओ-सुख़न [भाग १]	८)
संस्मरण	३)
हमारे आराध्य	२)
रेखाचित्र	४)
वर्द्धमान [महाकाव्य]	६)
मिलन-यामिनी	४)
संघर्षके बाद	३)
पहला कहानीकार	२॥)
द्विवेदी-पत्रावली	२॥)
रजत-रश्मि	२॥)
भारतीय ज्योतिष	६)
वैदिक साहित्य	६)
धूपके धान	३)
ध्वनि और संगीत	४)
माटी हो गई सोना	२)
बाजे पायलियाके घुँघरू	४)
संस्कारोंकी राह	२॥)
पचपनका फेर	३)
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ	२॥)
संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	३)
और खाई बढ़ती गई	२॥)
शरत्के नारी-पात्र	४॥)
संस्कृतका भाषा शास्त्रीय अध्ययन	५)
कुछ मोती कुछ सीप	२॥)

१९५७–१९५८ के नवीनतम प्रकाशन

नये बादल	२॥)	शाइरीके नये मोड़ [भाग १]	३)
तीसरा नेत्र	२॥)	लेखनी बेला	३)
रक्तराग	३)	मेरे कथा गुरुका कहना है	२॥)
कालके पंख	३)	वाणी	४)
शरत्की सूक्तियाँ	२)	चेखवके तीन नाटक	४)
जय-दोल	३)	ग़रीब और अमीर पुस्तकें	१)
नये चित्र	३)	हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ	२॥)
तरकशके तीर	३)	बना रहे बनारस	२॥)
सौवर्ण	२॥)	बारह एकाङ्की	३॥)
शाइरीके नये दौर [भाग १]	३)	प्राचीन भारतके प्रसाधन	३)
शाइरीके नये दौर [भाग २]	३)		

१९५७ से पूर्वके प्रकाशन

हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन	५)	रेडियो-नाट्य-शिल्प	२॥)
जिन खोजा तिन पाइयाँ	२॥)	मुक्ति-दूत [उपन्यास]	५)
शेर-ओ-सुखन [२–५ भाग]	१२)	जैन जागरणके अग्रदूत	५)
खेल-खिलौने	२)	भारतीय विचारधारा	२)
अतीतके कंपन	३)	मेरे बापू	२॥)
अध्यात्म-पदावली	४॥)	पंच-प्रदीप	२)
ज़िन्दगी मुसकराई	४)	ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	६)
हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान	१)	गहरे पानी पैठ	२॥)
एशियाकी राजनीति	५)	आकाशके तारे : धरतीके फूल	२)